सिगरेट के टुकड़े

रजनी पनिकर

शारदा मन्दिर
नई सड़क
देहली

प्रकाशक —
शारदा मन्दिर,
नई सड़क
देहली।

प्रथम संस्करण
१९५६
मूल्य ३।)

मुद्रक,
सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज
देहली।

नई पीढ़ी

•••

'ऐश्वर्य में भी एक सुख है एक आराम है' मेरी इस बात का लगभग वे सभी समर्थन करेंगे जिन की आयु ४१ के आस-पास है। ठिठुरी सिकुड़ी सुबह गरम-गरम रजाई में यदि नौकर मुझे एक खौलती हुई चाय की प्याली दे दे तो अपार सुख मिलता है।

मेरे पति लुरखा में औसत दर्जे के दुकानदार हैं। पहनने-ओढ़ने भर को मुझे पर्याप्त मिल जाता है। मुझे सौन्दर्य के प्रति अनुराग है। बाग-बगीचों में फुहारे चलते हैं मैं उल्ल-सित हो उठती हूं। मैं सोचती हूं मेरे उल्लास तथा बरसात में भरे झुके आम के नीचे नाचते हुए मोर के उल्लास में समानता है।

जमाना बदल गया है। आज परिवर्तन गतिमान है। नई पीढ़ी मेरा मतलब आजकल के लड़के-लड़कियों से है। इन की हर बात मुझे या मुझ से पांच-दस वर्ष बड़ों के लिए कौतू-हल पूर्ण होती है।

जो भी हो भाप कहानी सुनिये जसा मैंने कहा है कि ऐश्वर्य मुझे भाज भी भाता है। राजा महाराजाभों की फिजूल खर्चियों के किस्से मुझे याद हैं। भारत के गिने चुन सेठों के ऐश्वर्य के वारे में भी मैंन सुन रक्खा है। मेरे भाई किशोरी लाल जी की विभाजन से पहले पुस्तकों की दूकान थी। पुस्तकें लिखने का चस्का भी उन्हें लग गया था। भच्छी भाय हो जाती थी। विभाजन के बाद भैया ने दिल्ली में एक पुस्तका की दूकान पर नौकरी कर ली, एक के बाद दूसरे के यहां कहीं भी जम नहीं सके। भैया के दो लडके एक लडकी भौर एक पत्नी है। बडा लडका विभाजन से पहले विलायत चला गया था तो फिर लौटा नहीं। उसने वहीं विवाह कर लिया। छोटे लडके को वह किसी न किसी तरह मसूरी के एक भग्र जी कान्वेन्ट में पढ़ाते थे।

लगभग तीन वर्ष की बात है वह छोटे लडके से मिलन गये। जिस होटल में ठहर वह एक बूढ़ी भग्रेज महिला का था, उसे एक ऐसे मनजर की भावश्यकता थी जो होटल के फर्नीचर का पालिश कायम रख सके शीशे चमकते रख सके भोजन की सूची में भारतीय पकवानों के साथ-साथ दो चार भग्र जी पकवानों की भर्ती भी कर सके। लाहौर में भया की भंग्रेजी पुस्तकों की दूकान थी भौर वह भी माल रोड पर। भैया को भग्र जी पकवानों के नाम भी याद थे। होटल की बुढ़िया मालकिन ने भया को साढ़ तीन सौ वेतन तथा पांच प्रतिशत मुनाफे पर मैनजर के पद पर रख लिया।

इधर तीन वर्ष भया ने होटल भच्छा चलाया भौर एकाएक

जब बूढ़ी मासकिन ने अपने देश जाने का निश्चय किया तो भैया होटल खरीदने में सफल हुए।

पिछले छः मास से उनके पत्र आ रहे थे भाभी भी बुला रही थीं कि एक बार मसूरी आओ। यहां जो होटल लिया है वह बहुत बड़ा है उसमें बड़ अच्छे कालीन बिछे हैं हर कमरे में गद्दार पलंग की पीठिका के पीछे बिजली भी लगी है। होटल के कमरे ऐसे सजे हैं बसे मजे हैं। रोज शाम को यहां नृत्य होता है। भाभी ने लिखा मधु तुम आओ और जमाई बाबू को भी साथ लाओ एक बार आकर यहां की बहार तो देखो अब हमारी हैसीयत भी है कि तुम्हें बुला सकें।

एकाएक भाभी का पत्र आया कि मनोरमा की छुट्टियां हो रही हैं उसके साथ मसूरी चली आओ। इधर मनोरमा से मैं दो तीन वर्ष से मिली भी न थी। मने मसूरी जाने का तय कर लिया और दिल्ली पहुंच सीधी मनोरमा के कालेज होस्टल में पहुंची। मनोरमा को वहां देखा तो देखती रह गई। पिछले दो तीन वर्ष पहले की मनोरमा अब युवती हो चुकी थी। उसके परिधान ने मुझे चौंका दिया। केवल एक सफेद साड़ी धोती पांव में चप्पल और रूख केशों का जूड़ा। कोई श्रृंगार नहीं मुस्कान में लावण्य और आंखों में चमक। मुझे लगा कि उस चमक के पीछे 'क्रोध' छिपी है।

मनोरमा से उस दिन मेरी संक्षिप्त बातचीत हुई। दूसरे दिन शाम को हम मसूरी जा रहे थे। भैया बड़े आदमी हैं, यही सोचकर मैंने मनोरमा के लिये और अपने लिये फस्ट क्लास में

सीट रिजर्व करवा ली थी। स्टेशन पहुंच कर उसने फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठने से इन्कार कर दिया।

कारण पूछा तो जसे उसका चेहरा क्रोध से आरक्त हो गया, "बुआ कारण पूछने की क्या आवश्यकता समझी।'

देहरादून पहुंच कर मैंने उसे एक अच्छे से रेस्तरां में चाय पिलानी चाही परन्तु वह स्वयं ही चाय की दूकान देख मुस्करा कर बोली 'बुआ मेरे लिए तो यह चाय की दूकान ही ठीक है।'

मैं हतप्रभ थी।

जब हम मसूरी पहुंचे तो तेज वर्षा हो रही थी। भैया और भाभी तब भी हमें मोटर के अड्डे पर लेने आये हुए थे।

मनोरमा ने मां को देखा तो गले मिलने के लिए भाग बढ़ी फिर एकाएक पीछे हट गई जसे अशास 'करेंट' ने उसे धक्का दे दिया हो। मैं और भाभी एक दूसरे का मुंह देखने लगे। भैया ने सुझाया, वर्षा हो रही है चलो, रिक्शा में चलते हैं। मनोरमा ने इन्कार कर दिया, हम सब को वर्षा में भीगते हुए जाना पड़ा।

अकेले में राधा भाभी ने मुझे बताया कि मसूरी आकर उन्होंने बाल बाब करवा लिये हैं पहले वह जूड़ा बांधती थीं। मसूरी के इतने बड़े होटल के मालिक की पत्नी होकर उनके लिए बाल कटवाना आवश्यक हो गया था। लिपस्टिक का प्रयोग तो वह पहले भी करती थीं अब सब सलीनेदार हो गया था।

मनोरमा ने माँ के कमरे में श्रृंगार-मेज देखी तो बोली 'माँ यह सब तुम्हारे लिए है ?

राधा भाभी के हाँ कहने पर नाक भौं सिकोड़ कर बोली— "माँ तुम्हें इस आयु में यह सब ?"

मैंने भाभी का साथ देना उचित समझ हंसकर कहा 'भाभी अभी तो आप बयालीस की हैं। परन्तु तीस से अधिक नहीं लगतीं।

भाभी इस बात पर शिमूरी हो उठीं। माँ को अप्रतिभ होते देख मनोरमा चली गई।

मुझे मनोरमा के आचरण में बहुत दिलचस्पी थी। मैं एक छोटी सी बच्ची को घर छोड़ कर आई थी। मेरी सास की देख-रेख में वह बच्ची बड़ी हो रही थी। यदि वह भी ऐसी निकले ? मनोरमा केवल एक बात जानती है, ऐश आराम से विद्रोह।

मुझे विचार मग्न देखकर भाभी बोलीं— 'यह आज तुम्हारी ही तरह तीन वर्ष बाद घर आई है।"

कारण पूछने पर भाभी उत्तर देने वाली थीं कि किशोरी नाम भैया मुझे और भाभी को होटल की बाईं ओर वाली 'बालकनी' में चाय पीता देख कर आ गये थे।

भैया कहने लगे—

तीन वर्ष के बा" मसूरी आई है। एक बार छुट्टियों में वह छात्रों के साथ भील चली गई थी और एक बार दक्षिण भारत देखने की धुन सवार हुई थी। एक बार स्वयंसेवकों के दल में शामिल हो कर दिल्ली के पास ही छात्रों ने एक आदर्श नगर को

स्थापना की थी, मनोरमा उसकी सदस्या भी थी। गांव में खुदाई का काम भी करती रही, सड़क बनाई, अस्पताल बनाया और स्कूल की स्थापना की। आज चौथी बार छुट्टियां हुई हैं तो मसूरी आई है।"

मसूरी! रमणीय पहाड़ी स्थल, भाभी भया दोनों ही मुझ पर कृपा रखते। मेरा मन वहां रम गया। भैया के साथ घूम फिर कर मैंने मसूरी देख डाली। मनोरमा भी एक दो बार हमारे साथ गई थी। सैर करते समय भी वह न जान किस गहरे विचार में डूबी रहती। उसे खुल कर हंसते देखना तो जसे असम्भव था। मुझे अपना समय याद आता था, मैं बात बात पर हंस देती थी। घर के भीतर-बाहर आते जाते मुझे यह सुनना पड़ता कि जान कब इसकी बत्तीसी बन्द होगी। यह हंसती ही जायेगी।

भैया न होटल में "बार' भी खोल रक्खा था, जहां हर रात "डान्स' होता। लोग शराब पीते। शराब चोरी-चोरी बेची भी जाती। मनोरमा ने एक दिन वहां शराब बिकती देख ली। उस रात उसने भोजन नहीं किया, वह भूखी ही रही। भैया न मनाने का प्रयत्न किया तो कुपित हो कर बोली, 'मुझे आपस ऐसी आशा नहीं थी पिता जी। आप किसी लड़की के पिता होने के योग्य। चोरी चोरी शराब बेचते हैं, रुपया कमाते हैं और मां के बाल बाब करवा के इस शराब खाने में घूमने फिरने देते हैं।

भैया को जसे किसी ने मुख पर तमाचा मार दिया हो। वह ठिठके फिर गरज कर बोले—"कसी बात करती है? क्या

तेरी शिक्षा का मुझे यही लाभ होना था। मुझे पता होता तो मैं तुझे—।"

अब भी मनोरमा को लज्जा नहीं आई उसकी आँखें नहीं झुकीं। वह बोली— आप मुझे दासता के उस विदेशी रंग में ही रंगना चाहते हैं जिस में आपकी पीढ़ी की पीढ़ी रंगी चली आ रही है जो पीढ़ी होटल में बैठकर शराब पीने में रात को देर तक नाचने में और देर रात गए तक ताश खेलने में अभी भी अपना गौरव समझती है।"

मैंने उस समय नयी पीढ़ी की इस नन्हीं सी अवस्था को देखा। जैसे गति साकार हो उठी थी। वह आवेश में नहीं थी उसका मुख शान्त था। भाभी चुप खड़ी थी जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो। मनोरमा ने आँखें अपनी माँ पर गड़ा दीं और एक क्षण बाद तेजी से बाहर चली गयी। रात भर वह लौटी नहीं सड़कों पर घूमती रही। राधा भाभी ने अपना सिर पीट लिया।

'मधु देखा तुमने मेरा तो भाग्य फूट गया है। यह कैसी अजीब लड़की है। दूसरों की भी लड़कियाँ हैं गहने और कपड़े को तरसती हैं। इस मेम साहिब का मामूली सूती साड़ी चाहिये जेवरों से जन्म जन्म का बैर है। इसकी आयु की सब लड़कियाँ अच्छा गाती हैं, ढंग से सभा सोसायटी में आती जाती हैं। इस जैसा पागल तो मैंने कोई देखा नहीं। माई का कान्वेन्ट से नाम कटवा कर किसी हिन्दी स्कूल में भर्ती करवा दिया है। मुझे तो उसका भविष्य भी अंधियारा ही दीखता है।"

"क्या सुरेश अब कान्वेन्ट में नहीं पढ़ता ?"

"नहीं।"

"क्यों ?'

जब से तुम्हारी लाडली आई है उसका कान्वेन्ट में पढ़ना बन्द कर दिया गया है। वह फिजूल खर्ची समझी जाती है। मेरे बेटे की पढ़ाई मुझ से छिपाई जा रही है।"

राधा भाभी उदास हो गईं। भया भी मनोरमा से तंग आ गये। उन्हें लगा, उन्हें अपने विचार बदलने पड़ेंगे। यह जो उनकी धारणा थी कि लड़की बड़ी मेधाविनी है, उन्हें बिल्कुल त्याग देना होगा। मनोरमा अपने कमरे में गद्देदार पलग पर भी न सोती थी। हम लोगों के साथ होटल में खाना तो खाती पर स्वयं पकाती। राधा भाभी होटल के बावर्ची से भी अपना तथा अपने पति की रुचि का खाना बनवाने से न चूकती थी। वह कुढ़ती रहतीं कि लड़की कुछ भी नहीं खाती। सुरेश अपनी जीजी का भक्त था वह वैसा ही आचरण करता।

किशोरीलाल जी एक शाम को अपने आफिस के ड्राइंग रूम में बड़े जोर-जोर से बहस कर रहे थ। मनोरमा के बोलने की आवाज भी आ रही थी। उसकी आवाज भी ऊँची थी।

तुम आज शाम को पार्टी में चलोगी और पहले अपने पहनने के लिये एक गरम कोट पसन्द कर ला।

"मैं पार्टी में नहीं जाऊंगी। भर पेट खाना यहां मिल जाता है। वहां आज रात कोई सौ रुपये का खाना फेंका जायेगा। वही अन्न हम उन गरीब पहाड़ियों को क्यों न बांट दें उन

पकवानों को भरे पेट पर खाने की आपको क्या आवश्यकता है पिता जी ? वह होटल के सामने वाले कुलियों को दे दीजिए जो शायद सुबह से भूखे हैं।

"मनोरमा तुम्हें जाने क्या हो गया है। तुम तीन वर्ष घर से बाहर क्या रही हो तुम्हारा आचरण ही लड़कियों का सा नहीं रह गया। तुम अपने पिता को ऐसी बात कह रही हो ?"

राधा की आँखों में आँसू आ गये। मैं नई पीढ़ी की भावनाओं का आदर करने वालों में से थी परन्तु यह बात तो मुझे भी चुभ गई। पिता को कोई ऐसे भी कहता है। यह कालेज का मंच तो नहीं। यह घर था।

इस घटना के बाद भैया ने मनोरमा में दिलचस्पी लेना छोड़ दिया। वह जो चाहे करे, जहाँ चाहे जाय। दिन-दिन भर मनोरमा पहाड़ों के चक्कर काटती रहती। कभी-कभी दोपहर को किशोरीलाल जी और राधा सो रहे होते तो उस समय मैं जरूर मनोरमा से बातें करती। इधर कुछ दिनों से रेवती नाम का एक लड़का भी उसके साथ रहता। वह अधिक पढ़ा लिखा नहीं था शायद मैट्रिक के बाद प्रभाकर पास किया था। वह मसूरी के पास ही एक गाँव में मास्टरी करता और शाम को या छुट्टी के दिन पैदल आकर मनोरमा से मिल जाता। मनोरमा में और उसमें घंटों बातें होतीं और दोनों विदेशी क्रान्तियों की चर्चा करते। कभी-कभी मनोरमा रात को भी बाहर रहने लगी थी।

राधा भाभी जैसे इस ओर से बिल्कुल चिन्तित नहीं थीं उनका अपने बालों में क्लिप लगाने बगल में उठने बैठने से ही

फ़ुरसत नहीं थी कि लड़की को देखतीं ।

मैंने उचित समझा कि मैं उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करू ।

राधा भाभी ने धीरे से मुस्कराते हुए कहा— शायद मनोरमा अब विवाह कर रही है ।'

हो सकता है ।

मुझे केवल एक चिन्ता है कि यह विवाह किसी ऐसे व्यक्ति से करेगी जिस के पास इस को खाने पहनाने के लिये रुपया पैसा नहीं होगा । जो इससे यतन मंगवायेगा । यहाँ तक कि यह बीमार हो जायेगी । इस लड़की का दिमाग खराब है ।"

अब मनोरमा को मुझ से बातचीत करने का भी कम समय मिलता था । वह अधिकतर रेवती शरण में ही व्यस्त रहती थी ।

मुझे मसूरी आये, लगभग दो मास हो गये थे । मैं जी भर कर घूमी थी और मैंने जी भर अच्छा भोजन खाया था । राधा भाभी और किशोरी लाल जी भैया के आतिथ्य से मैं तृप्त थी ।

मनोरमा और सुरेश का आचरण ही अब उनके क्षोभ का कारण था । वसे भगवान की अपार कृपा थी । धरती पर इतना आराम भी किसी को मिल सकता है इसकी संभावना मैं तभी कर पाई जब मैंने भी उस आराम को भोगा । जसा मैं पहले कह चुकी हूं मुझे इस आराम से चिढ़ नहीं है । मुझे

इससे सुख मिलता है। मैं स्वयं बड़ी ही साधारण स्थिति के आदमी की पत्नी हूं।

मैं जब मसूरी से चली तो मनोरमा का पता नहीं था वह घर पर नहीं थी। राधा भाभी से उसके विषय में कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। मैं कलकत्ता लौट आई। कलकत्ता आने के लगभग तीन चार दिन बाद मुझे मनोरमा का पत्र मिला।

पूजनीय बड़ा जी

आपके जाने से पहले मैं आप से न मिल सकी। क्योंकि मैं उस स्थिति में माता जी—ममी कहलवाना अधिक पसन्द करती है—के सामने नहीं आ सकती थी। उनको मेरे आचरण से बहुत दुःख होता। मैंने रवती से विवाह कर लिया है और मैं यहां समाज सेवा का कार्य कर रही हूं साहित्य में एम० ए करके क्या होता? यहां बीमारी है अज्ञान है दारिद्रय है और शोषण है। पिता जी के होटल के लिये घी यहां से जाता है जो रुपया भर वह मसूरी में साढ़े तीन रुपय सेर बेच देते हैं और होटल की रसोई में वनस्पति घी से खाना बनता है। मैं चाहती हूं इन लोगों का भी परोपकारी संस्थाओं से कुछ लाभ करवा सकूं। दवाइयों की आवश्यकता यहां है जहां लगभग ७५ प्रतिशत लोग बिना उपचार के मर जाते हैं। गान्धी जी के सिद्धान्त क्या हैं, विनोबा जी के कार्य और विचार इन लोगों को बताना है। केवल शहरों में रह कर होटल चलाने से और धड़ाधड़ रुपया कमाने से हमारा काम नहीं चलेगा। न ही रुपया कमा कर समाज सेवा पर बड़े बड़े भाषण देने से कुछ बनेगा। भूमदान आन्दोलन से यदि मैं इन

लोगों का कुछ कर सकू तो इस से बढ़ कर मेरे लिये गौरव की कोई बात न होगी।

मां और पिता की पीढ़ी में निजी सुख ही सब कुछ है। बुआ जी, हमारी पीढ़ी तो कुछ नया सोचेगी। उस से तो आप यह पुरानी आशा नहीं रखतीं। उम्मीद है कि कम से कम आप मुझे अभिशाप नहीं मानेंगी। अपने कार्य में यदि सफल हुई तो मैं आपको आमन्त्रित करूंगी। आप आशीर्वाद देने आइयेगा।

आपकी आज्ञाकारिणी

मनोरमा

ओह! राधा भाभी और किशोरीलाल भया पर इस विवाह का क्या प्रभाव पड़ा होगा। किशोरीलाल की आयु पैंतालीस वर्ष की है और मनोरमा की बीस वय की, यह पच्चीस वय का अन्तर! हमारे लिए नई पीढ़ी ऐसी है तो जब मनोरमा के सन्तान होगी, बिल्कुल नई पौदें उसका भविष्य कैसा होगा? उसकी मान्यतायें क्या होंगीं?

लोगों का कुछ कर सकू तो इस से बढ़ कर मेरे लिये गौरव की कोई बात न होगी।

माँ और पिता की पीढ़ी में निजी सुख ही सब कुछ है। बुआ जी, हमारी पीढ़ी तो कुछ नया सोचेगी। उस से तो आप वह पुरानी आशा नहीं रखतीं। उम्मीद है कि कम से कम आप मुझे अभिशाप नहीं मानेंगी। अपने कार्य में यदि सफल हुई तो मैं आपको आमन्त्रित करूंगी। आप आशीर्वाद देने आइयेगा।

आपकी आज्ञाकारिणी

मनोरमा

ओह ! राधा भाभी और किशोरीलाल भैया पर इस विवाह का क्या प्रभाव पड़ा होगा। किशोरीलाल की आयु पैंतालीस वर्ष की है और मनोरमा की बीस वर्ष की, यह पच्चीस वर्ष का अन्तर ! हमारे लिए नई पीढ़ी ऐसी है तो जब मनोरमा के सन्तान होगी बिल्कुल नई पौद उसका भविष्य कैसा होगा ? उसकी मान्यतायें क्या होंगीं ?

यह पत्र

तुम्हारा पत्र आज तीन दिन बाद मिला। तुम ने लिखा है मैं तुम्हारे लिए पत्र के ऊपर सम्बोधन नहीं लिखती। तो क्या? पत्र तो लिखती हूँ। रोज शाम को घर आकर मेरा यही काम है कि तुम्हें पत्र लिखूँ। वह पत्र तुम्हें दूसरे दिन दोपहर को मिल जाता है। मेरी हर साँस डाक के इस सुप्रबंध को लाख लाख धन्यवाद देती है।

हाँ तो तुम्हारा पत्र इस बार भी नीरस है, न जाने क्यों तुम ऐसे रूखे रूखे पत्र लिखते हो। तुम्हारे पत्र मुझे उन बेजान रूखे नीम के पत्तों की याद दिला देते हैं जो हम गरम कपड़ों की तह में से सर्दियां आने पर निकालते हैं। तुम्हारे पत्र से ऐसे पता चलता है जैसे मैं तुम्हारी पत्नी नहीं केवल "सहकारिणी" मात्र हूँ।

आजकल बरसात है, वर्षा पुराने ठूंठ में नए कोंपल फूटते हैं। मेघ आकाशों का गर्जन सुन यदि मेरे हृदय की धड़कनें

मैं कहा था "जिस मैं तुम्हारी इन सुकुमार सुरमयी आँखों में स्वयं को बसा देखता हूँ तो लगता है कि मरणासन्न रोगी को समय पर पथ्य और दवा मिल रही है। आशा होती है जी जायेगा। तुम्हारे इसी एक वाक्य ने मेरा भविष्य निश्चित कर दिया था। तुम्हारी माता जी के विरोध करने पर भी हम एक सूत्र में बंध गये थे। अभी केवल तीन ही वर्ष तो हुए हैं।

पहले दो वर्ष तो बहुत अच्छी तरह कटे थे हंसी खुशी की लहर, मुस्कराहटों का मेला लगता था जैसे स्वर्ग के सारे सुख सिमट कर हमारी साँसों में आ गये थे। उतनी खुशी में भी तुम्हारे औंठ सिले रहते तुम खामोश मेरी ओर देखते रहते। तुम्हारी वह खामोशी मुझ से सब कुछ कह देती। अमूल्य क्षणों की उस मधुर स्मृति को स्मरण कर अब भी मैं अपने को भूलसा जाती हूँ।

तुम लिखते हो तुम्हारे अफसर तुम से बड़े प्रसन्न हैं तुम काम बहुत अच्छा करते हो। यह पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई इसमें सन्देह नहीं। अब तुम्हारे पत्र के चार पृष्ठ केवल इन्हीं बातों से भर रहते हैं कि तुम क्लब में गये तो तुम्हें कौन मिला दफ्तर में क्या क्या बात हुई। दोस्तों के साथ तुम पिकनिक पर चले गए, अमुक जगह तुम 'मैंगो पार्टी' में सम्मिलित होने गये तो जानते हो मुझे क्या लगता है? मैं अभाव से भर उठती हूँ। मेरा अभाव एक बहुत बड़ा रूप लेकर मुझ पर वैसे ही पर कर जाता है जैसे एक दिन पुरानी दुल्हिन पर सज्जा का आवरण। वह सज्जा उसके लिये मीठी होती है पुलक भरी होती है परन्तु यह अभाव मेरे लिये घनीभूत अतृप्ति छोड़

बढ़ जायें तो उन्हें मैं कैसे दोष दूं ? प्रकृति का हरा शृङ्गार यदि मेरे अन्तर में टीस भर दे और आँखों के आँसू आँखों में ही तुम्हारी आकृति को धो डालें तो मैं क्या करूँ ? मेरे पास केवल एक ही साधन रह जाता है कि मैं तुम्हारे पत्र पढ़ने लगूं। मुझे सिगरेट पीने की आदत नहीं है कि उसी के धुएँ में अपने हृदय के हाहाकार को छिपा लूं। और शायद तुम यह सहन भी न कर सको कि पत्नी सिगरेट पिये।

तुम बच्चू के पत्र तो लिख सकते हो मैं तुम्हें कवि कालिदास का चारण तो नहीं बनाना चाहती जो अपनी प्रिया को बादल के हाथ सन्देश भेजता है लेकिन फिर भी इतना तो चाहती हूं कि तुम कुछ ऐसा लिखो जिस से जमा हुआ खून नसों में बहने लगे। जानते हो अनुभूति जब सजग होती है तो उस के साथ पीड़ा और कसक होती है तो कराह अपने आप निकल जाती है। शायद तुम इस कराह से परिचित नहीं, तभी तो व्यक्त नहीं कर पाते।

नारी भी क्या है कृष्ण मैं सोचती हूं नारी की आस्था ने ही पुरुष को मनुष्य रूप में भी भगवान् का सम्बोधन दिया है। पुरुष को और कोई देवता कह कर पुकारता है? जानते हो नहीं। केवल नारी। मैं भी नारी हूं कृष्ण और आप मैं तुम्हारी पत्नी मैं तुम्हें नित्य नये सम्बोधन देती हूं तुम्हारी तरह रोज रोज वही घिसा पिटा प्रिय बिमला ही नहीं।

तुम्हें याद होगा कि आज से तीन बरसातें पहले हमारा विवाह हुआ था। विवाह से पहले केवल एक वाक्य तुमने ऐसा कहा था जो मुझे भुलाए नहीं भूलता आज भी याद है। तुम

सुन ही रहती है। शाम को घड़ी भी सुई अभी पाँच पर नहीं पहुँचती कि उस के पति उसे घर से लाने के लिए आ जाते हैं। है तो बुरी बात परन्तु उन दोनों को इस तरह इकट्ठा जाते देख मैं ईर्ष्या से भर उठती हूँ। काश हम इस तरह इकट्ठ होते। पर ऐसा भाग्य मुकद्दर में पता नहीं हुई हूँ। जितना समय मैं दफ्तर में काम करती रहती हूँ वह तो ठीक व्यतीत होता है परन्तु जब काम नहीं रहता जब मैं घर आ जाती हूँ तो खाली बातें के सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। तब उस समय अपने को स्मृतियों में भुला रखना भी कठिन हो जाता है तो मैं तुम्हारे पत्र खोल कर पढ़ती हूँ। रात को नींद नहीं आती तो भी तुम्हारे पत्र ही मेरा सहारा होते हैं तुम इन पत्रों को इतने निर्मोही ढंग से लिखते हो जैसे तुम्हें मुझ से कोई मतलब नहीं। कोई लगाव नहीं। कृष्ण! ऐसा मत समझना कि मैं तुम्हारे हृदय के भावों से परिचित नहीं। परन्तु मैं नारी हूँ और नारी कुछ बातों में अभिव्यक्ति चाहती है। मौन स्नेह वहीं तक अच्छा लगता है जब देने वाला और लेने वाला पात्र एक-दूसरे के पास हों। एक स्नेह सिक्त पत्र जिस से मुझे यह आभास मिले कि तुम भी मुझे याद करते हो मुझे कितनी सान्त्वना दे सकता है। जाने इतना पढ़ लिख जाने के बाद भी तुम्हें पत्नी को प्रेम-पत्र लिखना क्यों नहीं आया। मेरा हृदय तुम्हारे एक पत्र के लिये तड़प उठता है। सुनो एक बात मेरी बुरा न मानो तो मैं तुम्हें उदाहरण के लिए एक पत्र लिख कर भेजती हूँ, उसी तरह का स्नेहभरा पत्र तुम मुझे भी लिखना। देखो तुम्हें मेरी

प्यासा है। उसका आभास भी तुम्हें हो पाये तो मैं अपने को सौभाग्यशाली मानू गी। तुम कहोगे यह मैं क्या बसिर पैर की बातें कर रही हूं, पर यह सच है कृष्ण तुम अपने में ही इतने पूर्ण हो तुम नहीं समझ सकोगे। यह उल्हाना नहीं है यह मेरे हृदय की सच्ची वेदना है।

तुमने पढ़ाई के लिए कर्ज लिया ठीक है तुम शिक्षित न होते तो इतने बड़ अफिसर कैसे बनते और फिर हमारी मुलाकात कैसे होती। यह शिक्षा तुम्हें तो महगी पड़ी ही, परन्तु उसका मूल्य जो मुझे चुकाना पड़ रहा है वह बहुत अधिक है। मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि तुम से दूर रहकर मेरी हालत ऐसी होगी। अब तो एक वर्ष होने को आया, तुम कहोगे अभी कुछ मास पूर्व तुम छुट्टी लेकर यहां आये थ वह केवल एक सप्ताह ही तो था। तुम्हें अपने दोस्तों स मिलने मिलाने स ही फ़ुर्सत नहीं मिली। साल भर में एक सप्ताह क्या होता है? जब तुम तुम अब मिलते हो, तब भी तुम्हें कुछ नहीं कहना होता। तुम बहुत होगा तो यही लिखोगे कि मैं छुट्टी लकर तुम्हारे पास चली आऊं परन्तु उसमें भी रुपया खर्च होना है और मैं किसी भी प्रकार की फिजूलखर्ची नहीं करना चाहती जल्द से जल्द तुम्हारा कर्जा निपटा देना चाहती हूं। तुम अपने पत्रों को इतना रूखा न लिख कर जरा कोमल बना सकते हो। मैं यहाँ अकेली हूं। सखियां भी हैं एक दो। उन्हें देखती हूं तो तुम्हारी याद और भी सालने लगती है। अ मा दिन भर काम करते करते बीच में अपने बच्चे की बात

सोचता हूँ, मैं इस मान के योग्य भी हूँ ? विमला जब मैं कभी कभी पड़ोसी की पत्नी के खिलखिलाने का स्वर सुनता हूँ तो मुझे उसी क्षण तुम्हारा विचार आ जाता है।

विमला आज यह कर्ज न होता तो हमारी एक ऐसी दुनियाँ होती जिसमें कृत्रिम वर्षा नहीं सुख की वर्षा होती मुस्कराहटों के बादल आते। और दिल्ली गाड़ी से लखनऊ से एक रात का फासला है मैं एक निश्वास से उसे पार कर जाता हूँ।

विमला तुम्हारा बनाया नींबू का आचार मिल गया था इस बार तो सचमुच बहुत चटपटा बना है। आम का आचार कब भेज रही हो यही तो मौसम है न। तुम इस वर्ष की छुट्टी कब ले रही हो ? तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में रहूँगा।

मधुर याद के साथ

तुम्हारा

कृष्ण।

अब तुम्हारे बच्चों से पत्र की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

तुम्हारी विमला।

कसम जो तुम इस सुझाव पर हँसे तो। यह मेरी गहन भावनाओं का उपहास होगा मेरे प्रेम का निरादर होगा। तुम ऐसा ही पत्र लिखने में अपने को असमर्थ पाओ तो तुम यह ही पत्र अपने हाथ से कागज पर उतार कर मुझे पोस्ट कर दो तुम नहीं समझ सकते यह पत्र मुझे कितना सुख कितनी शान्ति देगा।

विमला

तुम्हारे दो पत्र आज मिले परन्तु उन से मेरी तसल्ली नहीं हुई विमला। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्नेहपूर्ण पत्र लिखती हो फिर भी मुझे यह जीवन अधूरा लगता है। सवेरे सो कर उठता हूं तो तुम दिखाई देती हो चाय पीता हूं तो कड़वी लगती है क्योंकि तुम्हारे हाथ की बनी चाय में और ही स्वाद है।

विमला सच मानो तुम्हारे बिना यह जीवन बिल्कुल सूना लगता है। मैं दफ्तर जाता हूं मन लगाकर काम करता हूं परन्तु काम करने में कभी-कभी तुम्हारी याद आकर जैसे लेखनी की नोक पर बैठ जाती है। वह याद के भार में एक अक्षर भी और नहीं लिखती तो मैं तुम्हारे पास पहुंच जाता हूं तुम्हें अपने स्वागत में मुस्कराते हुए पाता हूं तो मन ही मन प्रसन्न हो उठता हूं कि हमारा जीवन सुखी है उन दम्पतियों की तरह नहीं है जो प्रेम के नाम पर विवाह कर लेते हैं परन्तु पीछे हरदम उनके घर में कलह हानी रहती है।

विमला, तुम मुझे इतना मान देती हो कि मैं कभी-कभी

दो दीप

दो दीप

रजौरी जम्मू के पास ही एक भारतीय सेना के कैम्प में राजेश अपनी वर्दी में कसा हुआ बैठा था। कपड़ों के तनाव से भी उसके शरीर और दिल की ऐंठन नहीं दब रही थी। सन्ध्या का अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ रहा था। दूर के पहाड़ उदास और भयानक लग रहे थे। राजेश के मन का अन्धकार बाहरी तिमिर से मेल खा रहा था।

इतने में एक सैनिक दो जलते हुए दीपक उसकी मेज से दूर रखने लगा। राजेश का ध्यान उस ओर खिंच गया।

यह दीपक क्यों जला रहे हो?"

आज दिवाली है।

दिवाली!' दो दीप जलते हुए प्रदीप इनकी बत्ती में तेल है शक्ति है हवा के थपेड़े इन्हें बुझाने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु यह तब भी नहीं बुझते जब तक जीवन का आधार इनके पास है जीने की प्रेरणा इनमें विद्यमान है।

मगाते । इन विद्युत के दीपों के बीच ही कहीं छोटी दुकानों पर तस के दिये जल रहे थे। चहल-पहल से बाजार गरम था। आतिशबाजी भी छोड़ी जा रही थीं। राजन भीड़ में मित्रों से छूट गया बहुत दूर निकल गया। जलते दीपों की झिलमिलाहट में एकाएक उसका ध्यान खिंच गया एक लड़की का दुपट्टा जल रहा था एक दिये की बत्ती से उसने ज्वाला पकड़ ली थी लड़की हंस रही थी बेखबर थी कि उसका दुपट्टा जल रहा है। उसके साथ वाले भी नहीं जानते थे। राजन ने भाग कर दुपट्टा खींच लिया।

लड़की ने चीख मारी।

उसके पिता बोल उठे

'दुष्ट बदमाश

उनकी दृष्टि जलते हुए दुपट्टे पर पड़ चुकी थी। उन्होंने राजन को एक बार ऊपर से नीचे तक देखा और कृतज्ञ स्वर में बोले

'महाशय ! आपको लाख लाख धन्यवाद है आपने मेरी लड़की की जान बचाई है। नहीं तो वह जल जाती मैं बहुत शर्मिन्दा हूं अपनी बात के लिए, मैं अपने शब्द वापस लेता हूं असल में मुझे पता न था कि दुपट्टा जल रहा है मैं समझा भीड़ में प्राय: ऐसी घटनायें हो जाया करती हैं।"

उमा ने कृतज्ञता भरी दृष्टि से राजन की ओर देखा फिर एकाएक उसे आभास हुआ कि दुपट्टा तो उसके पास है नहीं। वह लजा गई, और लज्जा छुपाने के प्रयास में ही हंसने

राजेश के मन में उथल-पुथल मच गई यह दो दीप उन की जलती ज्योति, उसके अन्तर को कचोटने लगी। ऐसे ही दो दीप जला करते थे उमा की आंखों में।

उमा उसकी अपनी उमा, मोतीलाल हीरालाल व स्वामी की पुत्री उमा। बीस वर्ष की चचल युवती। सांवला सा रग, जिस पर हल्का पीलापन छाया हुआ था। घने लम्बे बाल, जिनकी वेणी सदैव सामने झूमती रहती। लम्बा सा गठा हुआ शरीर, बात करती तो भ्रम होता फूल झड़ रहे हैं हंसती तो धोखा हो जाता कोयल कूक रही है। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें ही आकर्षण का केन्द्र थीं। वह हंसती तो उनमें दो दीप जला करते उनकी ज्योति कोई भिन्न नहीं थी इन दो दीपों की ज्योति से।

राजेश उठकर घबराहट में चक्कर लगाने लगा। प्रत्येक अफसर के तम्बू के बाहर दो दीप जल रहे थे। केवल दो दीप राजेश के माथ पर पसीने की बूंदें चमकने लगीं। उसका ध्यान दो वर्ष पहले की दिवाली में होने वाली घटनाओं की ओर चला गया। राजेश तब विदेश का एक चक्कर लगा कर घर लौटा था। विदेश में चार वर्ष रहने पर उसे दिवाली कुछ भूल चुकी थी, जलते हुए दीपकों को देखने की चाह मन में भर उठी। वह घर में दीप जलते देख दो मित्रों के साथ बाजार की ओर चल दिया।

कनाटप्लेस की शोभा देखने का बनती थी। प्रत्येक दुकान पर रग बिरग बल्ब लग हुए थे, जो रह रह कर जग

राजेश ने बता दिया कि वह इंजीनियरिंग पढ़ कर लौटा है विदेश से अभी नौकरी की तलाश में है।

एकाएक घड़ी ने नौ बजाए। राजेश को मां का ख्याल आया वह प्रतीक्षा कर रही होगी। उसने क्षमा मांगी घर जाने के लिए छुट्टी चाही।

उमा मुस्करा दी थी उसकी आंखें ।

राजन ने देखा मेज के बीच दो मोमबत्तियाँ जल रही हैं। ऐसी ही ज्वाला उमा की आँखों में थी जब वह मुस्करा कर बोली थी .. आप कल हमारे यहां जरूर आइए अपनी माता जी को लेकर।

"कैप्टन राजेश अपना खाना खाओ ठंडा हुआ जा रहा है।" मायी फिर चिल्ला रहा था।

बेमन सा ही राजन ने कांच के गिलास में भरे हुए पानी को उठाया मुंह से लगाने के लिये कि वह दो आंखें फिर हंसती हुई दिखाई दी।

मसूरी के प्रिंस होटल में खाना खाते समय उन्हीं आँखों ने राजन से कहा था मिस्टर राजेश! अब तो देश को सैनिकों की आवश्यकता है आप को भी चाहिए कि सेना में चले जायें। राजन सिहरा उसका ध्यान अपनी वर्दी की ओर गया।

राजन अधिक देर तक नहीं बैठ सका वहाँ खाना छोड़ कर आ गया मुंह धोया उसने जैसे मुंह पर जल छिड़कने से वह पिछली बातों को भी मुला देगा। उसने अपने तम्बू में

सगी। तभी उसके विशाल मद भरे नयना में ज्योति असने सगी दूर असते हुए दीपों से सुन्दर !

किसी ने राजश क कन्धे पर हाथ रखा—'क्यों दोस्त, क्या बात है, इतने गमगीन नजर आ रहे हो, चलो कैम्प में पूजा ह चुकी है महात्मा जी की प्रार्थना भी हो च की है, तुम उस में भी सम्मिलित नहीं हुए अब मिठाई बटेगी वहां तो चलो।'

राजश अनमना सा उसके साथ हो लिया।

एक खेमे में मेज पर चीनी की प्लेट पड़ी थीं। राजश बठ गया एक कोने में साथी उसकी बगल में था वह बोलता जा रहा था राजश अपन ध्यान में मग्न था उमा क पिता सेठ हीरालाल उसे अपन घर ही ले गए मुह मीठा कर लो मेरी बच्ची की जान बचान वाले

साथी का धप्प स सनिक हाथ पीठ पर पड़ते ही वह चौंक उठा अरे मनहूस हो तुम खाओ न यह दो रसगुल्ले जम्मू से बगाली हलवाई की दुकान से बनकर आये हैं। खाते क्यों नही ?

दो केसरी रंग के रसगुल्ल उसकी प्लेट में पड़ थ। राजेश का हाथ कांप कर रह गया। उसन संयम स फिर हाथ बढ़ाया कि रसगुल्ला उठा ले ठीक इसी रङ्ग के दो रसगुल्ले दो हंसते हुए दीपकों ने राजेश के नयनों में होकर हृदय में झांकते हुए कहा था "खाइये न" राजेश ने हाथ उठाया

"क्यों महाशय आप कहां रहते हैं, क्या काम करते हैं ?" उमा के पिता पूछ रहे थ।

एक भारी के जाल में फंसता आया । इन दो अंगारों की अग्नि में यूं ही फंसता आया । वह दूर हो जाय इन से.. ।

आज उसे पता नहीं कहाँ है उमा और उसकी वह दो आँखें ! काश्मीर युद्ध के लिए योद्धाओं की माँग होने लगी राजेश भी भर्ती हो गया । उधर और मोर्चे में भी सफलता रही है वह । लेफ्टीनेंट से कैप्टन भी बना है । छुट्टी उसे मिल सकती है पर वह छुट्टी पर आना नहीं चाहता । माँ जम्मू आ गई है और उसका है ही कौन ? किसके लिए वह छुट्टी ले माँ को सप्ताह में एक बार देख आता है । उसे सन्देह होने लगा शायद उमा के हृदय में अब भी दीप जल रहा होगा । कौन जाने वह कहाँ है ?

तभी एक सैनिक दौड़ता हुआ आया साहब ! साहब आपके हाथ में दिये से आग लग गई, उतार डालिये । साथ ही सैनिक ने वह आग पत्तों द्वारा बुझा दी ।

दिये जल रहे थे पूर्ववत् निश्चल निस्पन्द । राजेश धूम्र में देख रहा था ।

जाकर कपड़े बदल लिए और फिर कुछ स्वस्थ मन से बाहर चक्कर लगाने लगा।

उसके साथ वाले कैम्प में रिकार्ड बज रहे थे, सगीत की मधुर स्वर लहरी सन्नाटे का तोड़ रही थी। राजेश की मेज के पास जलते दो दीपकों की ज्योति अब तेज थी, वह हस रहे थे, न जाने सैनिक उनमें कब आकर और तेल डाल गया था।

राजेश सोच रहा था, उसमें भी कोई तेल डाले। क्या मनुष्य को दिए की भांति यह आवश्यकता नहीं कि उसमें भी कोई तेल डाले, बत्ती ऊँची करे। मनुष्य का जीवन-दीप केवल स्नेह पान से ही जल पाता है।

राजेश को भी तो उमा ने कहा था पिछली दीवाली को 'राजेश मैं मैं जहां भी रहूंगी तुम्हारी यादका दीप सदव मेरे मन में जलता रहेगा। राजेश कठोर हृदय से सुनो मैं किसी की वाग्दत्ता धरोहर हूं तुम याद में आये राजेश परन्तु मेरी भावनाओं को तुमने उकसा दिया और अब स्नेह-दीप जलने लगा है राजेश यह सदा जलता रहेगा मैं अपना स्नेह सदा इसमें डालती रहूंगी बाहर से आने वाली आंधी से इसे दूर रखू गी।

राजेश को प्रथम बार पता चला कि उमा की आँखों में जलती ज्योति केवल आनन्द और प्रोत्साहन का सन्देश ही नहीं दे सकती और कुछ भी कह सकती है। राजेश को लगा यह स्नेह की पावन ज्योतियां नहीं, यह सब धोखा है भूल है। वह

आप ! तुम !!

आप ! तुम !!

आप ! तुम !!

आप ! तुम !!

आप ! तुम !!

बस नं० २ आने में अभी देर थी। लोगों का 'क्यू' चौराहे में लगे बड़े से बक्स के नीचे खड़ा था रमेश का स्थान सब से आगे था ।

प्रातः साढ़े नौ बजे से वह अपना दिमाग फाईलों में खर्च करते अब पांच बजे को घर जा रहा था।

सामने खड़ी स्वास्तिका मैन्शन्स पर उसका ध्यान गया। ऊंची विशाल और भव्य अट्टालिका.. ऊपर एक बहुत बड़ा सा साईन बोर्ड लगा था स्वास्तिका सिल्क और वर्मी सालून क्रीम ठेम पाऊडर के डिब्बे रमेश की आंखों में घूमने लगे।

एकाएक किसी की ऊंची एड़ी के पैर दब जाने के कारण वह चौंक पड़ा।

'आई एम सारी मुझे अफसोस है।"

आवाज बड़ी सुरीली किन्तु बारीक थी।

रमेश स्वर-लहरी में पीड़ा भूल सा गया।

रमा बस की छोटी सी खिड़की में से बाहर...... देखने लगी

उस दिन दफ्तर से छुट्टी थी शायद कोई बड़ा मेला था। रमेश काम पर नहीं गया। खाना खाकर घूमने निकल गया था जब थक कर चूर हो गया तो वह कौफ़ी हाउस में चला आया। अभी बैठा ही था.. ..

"ओह् मिस्टर रमेश कपूर".. ...रमेश की आँखें ऊपर उठ गई।

"मैं हूं रमा!" रमा की गहरी हरी साड़ी साँवले रंग को कुछ बाला बना रही थी।

रमेश अभी कुछ बोले ..कि रमा जम कर वहां बैठ गई। धीरे से बोली "कहीं आप को यूं ही तंग तो नहीं कर रही!" और रमेश की आँखों में देख कर वह मुस्करा दी।

लिपस्टिक से पुते होठों में से छोटे-छोटे दाँत चमक रहे थे।

"आज आप को बहुत दिनों के बाद देखा है" रमा धीमे से बोली।

रमेश ने उत्तर देना चाहा कि रमा चौंक गई—"ओह् राजेश तुम! आओ इधर आओ इनसे मिलो...यह हैं मेरे मित्र मिस्टर रमेश कपूर और यह हैं मेरे दूर के 'कजिन' राजेश।"

रमेश ने शिष्टता से दोनों हाथ जोड़े..."राजेश जी आप भी बैठिये न।

राजेश कुर्सी खींच कर बैठ गया इतने में बयरा आकर सामने

"श्रोह् क्षमा तो मुझे मांगनी चाहिए थी, जो इस बसस्टैंड पर खड़ा ऊंघ रहा था। श्राप मुझे क्षमा कर दें देवी जी।"

"देवी ! श्रोह्" ही ही वह खिल खिला दी। सांवले गले में पड़ी सफेद मोतियों की माला हिल उठी जैसे स्लेट पर चाक से लाईन खेंच दी गई हो। छोटे छोटे दांत लिपस्टिक भरे होंठों में नाच रहे थ वह रमेश से भी श्रागे श्राकर खड़ी हो गई।

रमेश मुस्करा दिया। समता का युग है नारी यदि जीवन की दौड़ में जबरदस्ती श्रागे खड़ी हो जाये तो पुरुष क्या उसे धक्का दे सकेगा ?

छोटे छोटे दांत फिर बाहर दिखने लगे श्रौर लिपस्टिक से रंगे होंठ फिर उस श्रोर देख रहे थे।

क्या मैं श्राप का नाम जान सकती हूं ?'

"रमेश रमेश कपूर।'

मैं मैं रमा अग्रवाल।"

लिपस्टिक वाले होंठ पुन मुस्करा रहे थे।

रमेश को इस स्वय के परिचय से कोई अचम्भा नहीं हुआ यह सब नइ रोशनी में श्राता है।

बस नं० २ श्रा गई थी। रमा इस बस में चढ़ गइ रमेश भी साथ वाली सीट पर बैठ गया टिकट काटने वाला श्राया, रमा के पास 'टिकट"

'दो।" रमा ने श्रंगुली से बताया रमेश की श्रोर मुस्करा कर देखा श्रौर बटुश्रा खोलने का उपक्रम करने लगी।

रमेश ने चवन्नी टिकट काटने वाले के हाथ में दे दी।

'नहीं जी अभी लाता हूँ'। और वह शीघ्र ही लाने लगा।

'क्यों रमेश जी सिनेमा चलोगे? अभी 'मैटनी' का समय तो है।

रमेश का दिल धड़कने लगा। एक लड़की उसे निमन्त्रण दे और वह उसे अस्वीकार कर दे। यह मर्दानगी भी

रमन ने कौफी का एक घूंट नीचे उतार कर कुछ शक्ति को महसूस किया।

"हां हां चलेंगे क्यों नहीं।" उसने बैरा को बिल लाने के लिए कहा।

राजेश उठ कर बाथरूम की ओर चला गया।

रमा ने रमेश की ओर मुस्कराकर देखा उसके छोटे छोटे दांत लिपस्टिक वाले होठों में से मुस्करा रहे थे। रमेश ने देखा रमा का मुख उस की गर्दन से अधिक सफेद है जैसे ब्लैक-बोर्ड के ऊपर वाले भाग पर से अभी तक चाक साफ न किया गया हो। दुबला शरीर और रंग बिरंगी यह तितली।

बिल आ गया था पांच रुपए पन्द्रह आने। रमेश ने कांपते हाथों से बटुआ निकाला रमा बोली "कौफी हाउस में चीजें 'डैम चीप' (अत्यन्त सस्ती) हैं। क्यों मिस्टर रमन?"

रमन ने अपने सब एक दो रुपये के छोटे नोट और जितनी इकन्नी दुअन्नियां पास थीं गिन कर पैसे पूरे किए। जब वह पैसे दे चुका था तो राजेश आ गया। सब बाहर निकल आए।

रमा बोली "इतने पेट भर खाने के उपरान्त आज तो पान खाने को जी चाहता है।

भाया। रमा ने तीनों के लिये भार्डर दिया—कौफी मटन, कटलेट, भौर चिप्स।

रमेश ने एक सरसरी दृष्टि से देखा राजेश भौर रमा बहुत घुल घुल कर बातें कर रहे हैं। न जाने क्या बिल भायेगा, एक बार बिल का विचार उसके मन में भाया भौर पुन यह खाने लगा।

रमा के कहकहे सारे कौफी हाउस में गूंज रहे थ। रमश भी उन में सहयोग दे रहा था।

किन्तु रह रह कर उसके कानों में यह भावाज भी पड जाती, बाबू जी घी समाप्त हो चुका, भभी भी पडोस वालों से लकर मैंने काम चलाया था। घी का डिब्बा लते भाइयेगा। घी डाल्डा! कोकोजम कुछ तो उसे लेकर घर जाना होगा नहीं तो शायद खाना न बने।

'मिस्टर रमेश भाप तो हमारे में दिलचस्पी नहीं ले रहे लगता है भाप किसी गहरे विचार में हैं—' रमा बोली।

'रमा तुम्हारे भच्छे दोस्त हैं कि तुम इतना नही जानती कि यह फिलास्फर हैं।" राजेश न मुस्कराते हुए कहा।

फिलास्फर, रमेश, भौर विचारक यह तो केवल इतना जानता है कि फाइलें भाई भौर फिर उन पर हस्ताक्षर करखा के भागे भज दीं कभी किसी चिट्ठी की एक प्रति टाइप कर दी।

राजेश भौर रमा हस रहे थ। खाना भी समाप्त पर चुके थे। कौफी का एक कप उन्होंने भौर भार्डर दिया। रमा बोली 'भाप को हमें थोड़ी देर तक सहयोग तो भवश्य देना चाहिये न भाप तो खा नहीं रहे।"

यू चमक रहा था मानों घने जंगल के अंधियारे में पड़ा हो।

"मिस्टर रमेश उस दिन आप ऐसे भागे कि क्या बतलाऊं, इतने दिन कहां थे ?"

रमश भजा रहा था।

"आज तो आप के घर चलूं गी। पापा दौरे पर गये हैं, मां को कुछ बुरा नहीं लगता मैं कहीं चाहूं जाऊं।

रमेश असमंजस में पड़ गया। उसके मन ने कहा यार तुम भाग्यवान हो जो वह आप से आप तुम्हारे पर इतनी कृपा कर रही है।

"हां हां आप बड़ी खुशी से चलिये।

सच !! वह मुस्करा रही थी। "आप के घर में कौन-कौन है ?

"कोई नहीं मैं अकेला ही हूं।"

"सच !!"

इस बार प्रसन्नता फूट-फूट कर बाहर आ रही थी।

वह और भी सट कर रमेश के साथ बैठ गई।

रमेश का घर आ गया। वह उतर गया। रमा वास्तव में उसके पीछे आ रही थी।

"आप आज मुझ पर बड़ी कृपा कर रही हैं।" रमेश ने तनिक सजाते हुए कहा।

"नहीं नहीं मैं तो अपनी खुशी से आ रही हूं। रमा के होंठ लिपस्टिक में से मुस्करा रहे थे। सांवला रंग फिर उमर से वह सुर्खी दांत भयानक लगते थे।

'मैं पान ले आता हूं वहां बड़ी भीड़ है आप ज़रा ठहरिये ।' रमेश बोला ।

रमेश की टांगें कांप रही थीं । उसे वह दिन याद आ रहा था जब उसे नौकरी नहीं मिली थी और वह स्थान स्थान पर भटक रहा था ।

वह एक बार भीड़ में घुसा तो घर जाकर उसने चैन की सांस ली ।

३

रमेश ने बस नं० २ में जाना छोड़ दिया था परन्तु वह ही केवल एक ऐसी बस थी जो उसके दफ्तर से निकट पड़ती थी । किनमिन वर्षा हो रही थी । वह दूर वाले बसस्टैंड पर न जा, एक बार फिर बस नं० २ के स्टैंड पर कुछ पीछे सिकुड़ कर खड़ा था ।

दो मास हो गये हैं उसकी रमा से मुलाकात नहीं हुई पर जहां भी वह लिपस्टिक वाले होंठ देखता उसे झट रमा का ख्याल आ जाता । बस आ गई वह उस में चढ़ भी गया ।

मिस्टर रमेश ।'

स्वर चिर परिचित था ।

रमेश चौंक गया । नसों में खून तेजी से चलने लगा । दिल बुरी तरह धड़कने लगा जैसे चलते चलते किसी ने अंगारा रख दिया हो उसके हृदय पर ।

रमेश ने कांपते हाथ जोड़ दिये ।

रमा ने एक बड़ा सा गुलाब का लाल फूल अपने बालों में रखा था जो उसके विलायती ढंग से कटे बालों में लगा

सिगरेट के टुकड़े

जब गली ग्रोर भी तंग हो गई तो रमेश धीरे से बोला "आप को तकलीफ तो नहीं हो रही मिस रमा ?'

"नहीं जी ।" ग्रौर फिर वही मुस्कराहट ! मानों मुस्कराना ही उसका जीवन ध्येय है ।

रमेश का घर आ गया बहुत ही तंग सीढ़ियों पर से होता हुआ एक छोटा सा कमरा था दो मंजिल पर । साथ ही छोटी सी रसोई थी जहां से घुआं कमरे में आ रहा था । रमेश ने एक टूटी हुई कुर्सी पर रमा को बैठने का इशारा किया तो वह चिल्ला उठी "यहां लाकर आपने मेरा अपमान किया है । यह आप मुझे किस के घर ले आये हैं ।"

'यह घर मेरा ही है आप खुद ही तो आना चाहती थी, अब आई हैं तो बैठिये चाय पी कर जाइयेगा ।

ओह चाय इस कमरे में आप क्या क्या सचमुच यह तुम्हारा घर है ! तुम्हारा !"

रमेश उसके स्वर की घृणा का आभास पा रहा था।

"चाय पीकर जाइयेगा मिस रमा ।"

"ओह ! नहीं यहां मैं एक मिनट नहीं रह सकती मुझे क्या पता था कि तुम्हारा यह घर है ।

"रमा एक क्लर्क का घर और क्या हो सकता है ?

'क्लर्क ।'

'हां क्लर्क सिर्फ एक क्लर्क ।"

रमा कमरे से बाहर जा चुकी थी । रमेश क्रोध में खड़ा था ।

सिगरेट के टुकड़े

अब गली और भी तंग हो गई तो रमेश धीरे से बोला
'आप को तकलीफ तो नहीं हो रही मिस रमा ?"

नहीं जी।" और फिर वही मुस्कराहट ! मानों मुस्कराना ही उसका जीवन ध्येय है।

रमेश का घर आ गया बहुत ही तंग सीढ़ियों पर से होता हुआ एक छोटा सा कमरा था दो मंजिले पर। साथ ही छोटी सी रसोई थी यहां से धुआं कमरे में आ रहा था। रमेश ने एक टूटी हुई कुर्सी पर रमा को बठने का इशारा किया तो वह चिल्ला उठी "यहां लाकर आपने मेरा अपमान किया है। यह आप मुझे किस के घर ले आये हैं।"

'यह घर मेरा ही है आप खुद ही तो आना चाहती थीं, अब आई हैं तो बैठिये चाय पी कर जाइयेगा।

ओह चाय इस कमरे में आप क्या क्या सचमुच यह तुम्हारा घर है ! तुम्हारा !'

रमेश उसके स्वर की घृणा का आभास पा रहा था।

'चाय पीकर जाइयेगा मिस रमा।'

'ओह ! नहीं यहां मैं एक मिनट नहीं रह सकती मुझे क्या पता था कि तुम्हारा यह घर है।

"रमा एक क्लर्क का घर और क्या हो सकता है ?

"क्लर्क।"

हां क्लर्क सिर्फ एक क्लर्क।

रमा कमरे से बाहर आ चुकी थी। रमेश क्रोध में खड़ा था।

सिगरेट के टुकड़े

साधारण सी वस्तु कभी-कभी जीवन के बहुत बड़े रहस्य खोल देती है। सिगरेट के छोटे-छोटे मसले टुकड़े आप सब ने बस में रास्ते में किसी आफिस में दुकान में कहने का तात्पर्य यह है कि दैनिक जीवन में आँख से गुजरने वाले कई स्थानों में देखे होंगे। कई बार तो हम उन्हें रौंद कर चले जाते हैं और कई बार पाँव से हाथ के अखबार से या अन्य किसी वस्तु से दूर हटा देते हैं। सिगरेट के टुकड़े को देख कर नाक भी सिकोड़ लेना सिगरेट पीने वाले के लिए भी दूर की बात नहीं तो जो नहीं पीते उनकी तो बात ही दूसरी है। लम्बी भूमिका न बाँध कर मैं कहानी कहती हूँ।

मैंने भी सिगरेट के टुकड़े बहुत जगह देखे थे हाट बाजार में यहाँ तक कि पिकनिक के स्थलों में भी पहाड़ों पर और दिल्ली में भी। हमारे परिवार में कोई सिगरेट नहीं पीता फिर भी दूसरे तीसरे दिन सिगरेट के टुकड़े मुझे दिखलाई दे जाते हैं। अब भी मैं झाड़-पोंछ करती हूँ उन्हें हटाती रहती

सिगरेट के टुकड़े

साधारण सी वस्तु कभी-कभी जीवन के बहुत बड़े रहस्य खोल देती है। सिगरेट के छोटे-छोटे मसले टुकड़े आप सब ने बस में रास्ते में किसी आफिस में दुकान में कहने का तात्पर्य यह है कि दैनिक जीवन में रोज से गुजरने वाले कई स्थानों में देखे होंगे। कई बार तो हम उन्हें रौंद कर चले जाते हैं और कई बार पाँव से हाथ के अखबार से या अन्य किसी वस्तु से दूर हटा देते हैं। सिगरेट के टुकड़े को देख कर नाक भौं सिकोड़ लेना सिगरेट पीने वाले के लिए भी दूर की बात नहीं तो जो नहीं पीते उनकी तो बात ही दूसरी है। लम्बी भूमिका न बांध कर मैं कहानी कहती हूँ।

मैंने भी सिगरेट के टुकड़े बहुत जगह देखे थे हाट बाजार में यहाँ तक कि पिकनिक के स्थलों में भी पहाड़ों पर और निम्मी में भी। हमारे परिवार में कोई सिगरेट नहीं पीता फिर भी दूसरे तीसरे दिन सिगरेट के टुकड़े मुझे दिखाई दे जाते हैं। जब भी मैं झाड़-पोंछ करती हूँ उन्हें हटाती रहती

सैम्पल्स भरूप। मेरी उन अमीर सहेली का यह एक छोटा सा मनोरंजन है भाषा में तो कहूँ यह उसकी "हाबी" है। शायद आपको यह बात दिलचस्प लगे कि मैं उस सुगन्ध का क्या करती हूँ। मैं भी उस एक कृत्रिम गर्वभरी मुस्कान से अपनी किसी रूठी मामी को मनाने के लिए नहीं तो किसी सहानुभूति को उपहार रूप में दे देती हूँ हर बार एक ही वाक्य भी दोहरा देती हूँ "खास विलायत से मंगवाई है।"

कहानी में फिर से भटक गई। तो उस सुसज्जित कमरे में मेरा सामान टिकाकर दोपहर का भोजन मेरे साथ खाने का वायदा करके, कुछ अनमने मन से वह "कैम्प" में चले गए। उनके मध्य वर्गीय समाज की मर्यादा को जरा सा धक्का लगा था कि वह ऐसे मामूली होटल में पत्नी को छोड़े जा रहे हैं। परन्तु इस कमरे की बनावट देख कर उनको हल्का सा सन्तोष हुआ।

मैंने 'बयरा' को चाय लाने के लिए कहा और स्वयं कमरे को घूम फिर कर देखने लगी।

कमरे की सजावट के विषय में मैं अधिक कहूंगी तो आप ऊब जाएंगे। इसलिए केवल इतना कह देने से आपको अनुमान हो जाएगा कि कमरा किसी साधारण श्रेणी के ईसाई परिवार को रुचि से सजाया गया था।

कमरे के बीच में एक गोल मेज पड़ी थी उस पर छपा साड़ी का एक मेजपोश बिछा था और हर रंग का स्वानियर कार्नेशन का बना सम्बा सा फूलदान रखा था। फूलदान में

हूं। कोई मिलने वाला छोड़ जाता है शायद या अगली घास की तरह वह अपने आप उग आते हैं। खैर, जिन सिगरट के टुकड़ों की कहानी मैं आपको सुना रही हूं वह मैंने आगरा के एक मामूली से होटल के सबसे बढ़िया कमरे में देखे थे।

मैं दो दिन के लिए आगरा गई थी। मेरे पति को अपने सहकारियों के साथ कैम्प'' में रहना था। यह मामूली सा होटल ''कैम्प' से दो तीन सौ गज की दूरी पर था। मैं इसी में ठहरी थी। होटल के मनेजर की सूरत से पता चलता था कि वह 'धूर्त' है। उसकी आंखें एक अजीब गोलाई से बार बार घूमतीं और उठतीं। उसने दस बारह पान की पीक से भरे दांत अपने भद्दे होठों में से बाहर निकालते हुए मेरे पति को आश्वासन दिया कि वह मुझ सब से बढ़िया कमरे में रखेगा और वह(यानी मेरे पति)किसी बात की चिन्ता न करें।

मेरा सामान होटल के मुख्य भवन से हटा कर एक बड़े से कमरे में रखवा दिया गया। वह कमरा अन्य कमरों से अलग था। उसके सामने बरामदा भी था। बाहर चिक। कमरे के भीतर परदे भी बुरे नहीं थे। पिछली खिड़कियां बगीचे में खुलती थीं।

कमरे में पहुंचते ही एक तेज विलायती सुगन्ध से हमारा सिर भन्ना उठा। हां उसका प्रभाव सुखद था। मैंने सुगन्ध को पहिचान लिया, क्योंकि मेरी एक अमीर सहेली, विलायत से हर दूसरे-तीसरे महीने यही सुगन्ध मुझ भेज देती है। सुना है भारत में उसकी कीमत छप्पन रुपए बारह आने है, शायद

मेन्टलपीस सजना। मेरी उस अमीर सहेली का यह एक छोटा सा मनोरंजन है भाषा में जो कहूँ यह उसकी "हॉबी" है। शायद आपको यह बात दिलचस्प लगे कि मैं उस सुगन्ध का क्या करती हूँ। मैं भी उस एक कृत्रिम गर्वभरी मुस्कान से अपनी किसी बड़ी मामी को मनाने के लिए नहीं तो किसी सहपाठिनी को उपहार रूप में दे देती हूँ हरबार एक ही वाक्य भी दोहरा देती हूँ "खास विलायत से मंगवाई है।"

कहानी में फिर मैं भटक गई। तो उस सुसज्जित कमरे में मेरा सामान टिकाकर दोपहर का भोजन मेरे साथ खाने का वायदा करके कुछ अनमने मन से वह 'कैम्प' में चले गए। उनके मध्य वर्गीय समाज की मर्यादा को ज़रा सा धक्का लगा था कि वह ऐसे मामूली होटल में पत्नी को छोड़े जा रहे हैं। परन्तु इस कमरे की बनावट देख कर उनको हल्का सा सन्तोष हुआ।

मैंने 'बयरा' को चाय लाने के लिए कहा और स्वयं कमरे को घूम फिर कर देखने लगा।

कमरे की सजावट के विषय में मैं अधिक कहूँगी तो आप ऊब जायेंगे। इसलिए केवल इतना कह देने से आपको अनुमान हो जाएगा कि कमरा किसी साधारण पेशा के ईसाई परिवार की बैठक सा सजाया गया था।

कमरे के बीच में एक गोल मेज पड़ी थी उस पर छपा नर्गिस का एक मेजपोश बिछा था और हरे रंग का स्फटिक पत्थर का बना लम्बा सा फूलदान रखा था। फूलदान में

कागज के गुलाब के फूल। इस प्लास्टिक के युग में कागज के फूल बनावटी मुस्कानों और सस्ते मेकअप' की तरह बहुत प्रचार पा गये हैं। परन्तु मुझे इन्हें देख वैसे ही झुंझलाहट होती है जैसे सुबह नाश्ता करते समय दूध के प्याले में पचहत्तर प्रतिशत पानी और पच्चीस प्रतिशत दूध देख कर होती है। छींट के मेजपोश पर असंख्य सिगरेट के टुकड़े बिखरे थे। सिगरेट के टुकड़ों से दबी हरे रंग की ऐशट्रे" का केवल एक कोना मुझे दिखलाई दिया। कमरा साफ था बिस्तर पर कोई सिलवट नहीं, फिर यह मेज शायद साफ नहीं की गई थी। मैंने देखा, सिगरेट की पिछली तरफ पर सुनहरा कागज लगा था। मैंने सुन रक्खा था कि सुनहरी कागज वाले सिगरेट बहुत महंगे होते हैं। इतने सारे एक दम उसने कैसे सुलगा लिये होंगे। डर से सिगरेट पीने में उस व्यक्ति को जाने कितना समय लग गया होगा। क्या उसकी सांस नहीं फूल गई? एक दम इतने सारे सिगरेट! मैंने खिड़की में देखा वहां भी सिगरेट पड़े थे। कमरे में एक आराम कुरसी पड़ी थी उसके नीचे भी अधजले सिगरेट पड़े थे। गोल मेज के नीचे 'क्रेवन ए' का खाली डिब्बा पड़ा था।

तो वह व्यक्ति क्रेवन ऐ' का सिगरेट पीने वाला था। वाह! वाह! बहुत शौकीन था। मैंने बहुत से धनीमानी लोगों को देखा है। कोई तो जब में 'कपस्टन' रखते और पीते हैं "चारमिनार। कोई 'कैप्स्टन' पीते हैं और हाथ में ५५५ का डिब्बा रखते हैं। हां कुछ ऐसे भी होते हैं जो *मांग* कर काम

पाया करते हैं, वह माँग कर ही सिगरेट पीते हैं। जो "कै बम ए" पीता है वह अवश्य ही सम्पन्न व्यक्ति होगा।

जो "वह" आराम कुर्सी पर बैठकर सिगरेट पीता रहा खिड़की के पास खड़े होकर भी पीता रहा तभी तो इतने टुकड़े हैं। मैंने टुकड़ों की संख्या को सहम कर देखा जैसे वह सब के सब मेरी ओर देख रहे हों। एक-एक सिगरेट के टुकड़े में एक-एक अरमान जब रहा था सुलग रहा था। हो सकता है एक ही अरमान बार-बार सिगरेट की उमस और गरमी में जला हो। शायद अरमान की अभी राख भी न हुई होगी। जाने कौन अभागा यहाँ सिगरेट फूंकता रहा।

मेरा मन उस अज्ञात व्यक्ति के लिए समवेदना से भर उठा। जिज्ञासा नारी के चरित्र का एक विशेष अंग है। पुरुष भी जिज्ञासु होते हैं। पर उस समय मेरी जिज्ञासा इतनी तीव्र हो रही थी कि मैंने अपने से ही बहस करना उचित नहीं समझा। मेरा मन उस सिगरेट के टुकड़ों की कहानी जानने के लिए उतावला हो गया।

इतने में 'बेयरा' चाय ले आया। मैंने उससे पूछा—"मेरे आने से पहले इस कमरे में कौन आया था? वह मुस्करा कर बोला "कोई बाबू साहब आये थे। रात को नौ बजे आये खाना भी नहीं खाया। एक बार उन्होंने चाय पी थी और दो "अरमान" मंगवा कर रख ली थी।"

सुबह ८ बजे जब 'बेयरा' उन्हें चाय देने आया था तो वह सोये न थे वैसे ही सूट बूट पहने बैठे थे। सुबह उन्होंने

चाय नहीं पी। केवल अपना बिल मगवा कर पसे दे कर व सुबह-सुबह चले गए थे।

'बेयरा' ने यह भी बतलाया कि अभी सवेरे के नौ बजे थे और सफाई करने वाला नहीं आया था, यदि मैं चाहूं तो 'बेयरा' सफाई करवा सकता था।

जाने किस अज्ञात प्रेरणा वश होकर मैंने कहा था 'सफाई की आवश्यकता नहीं।' फिर मैंने झिझकते हुए उससे पूछ लिया कि वह देखने में कैसे थे? 'बेयरा' ने अपनी बुद्धि के अनुसार बतलाया कि वह चेकदार गरम कोट पहने थे जिसका रंग कम दूध वाली चाय जसा लगता था उसमें लाल रग भी मिश्रित था, उनकी पतलून का रग वैसा ही था, जैसा आम तौर पर बाबू लोगो की पतलून का होता है। उनका कद बहुत लम्बा था और आँखें भूरीं।

मेरे पूछने पर कि बाबू साहब कुछ उदास थे? बयरा' ने उत्तर दिया—नहीं, वह उदास तो नहीं थे, पर कुछ ऐसा लगता था मानो वह अपने आप से बातें कर रहे थे। क्यों बीबी जी? क्या आप की कुछ जान-पहिचान के थे?'

मैंने उसका उत्तर नहीं दिया, केवल उसे यही कहा था 'जाओ तुम अपना काम देखो।

जा कुछ बयरा ने कहा वह तो किसी फिल्मी नायक का सा आचरण लगता था। मैंने दूसरी बन्द खिड़की भी खोल डाला, अपने लिए चाय का प्याला बना लिया और उसी आराम कुरसी पर बैठ गई जिस पर शायद कुछ घट 'वह बठा था।

एकाएक मुझे अपनी मनोदशा पर स्वयं हंसी आ गई। मुझे कौन सी जासूसी करनी है ? होगा कोई। सिगरट पीता रहा है तो अपने। पसीना बहाता रहा है तो अपना। समस्या का समाधान ढूंढ़ता रहा है तो अपने लिए। मुझे उससे क्या लेना देना।

अभी मैंने दो-तीन घूंट चाय भी न पी होगी कि मेरा मन फिर उन सिगरट के टुकड़ों में फंस गया। काश ! हम अपने जीवन में ही मनसब रक्खें। जो मजा दूसरों की जिन्दगी में झांकने में आता है शायद उतना ही किसी उपन्यास पढ़ने से आता है। मेरे मन में भिन्न-भिन्न कल्पनाएं जन्म लेने लगीं। इस आगरा शहर में जहां प्रेम का इतिहास संगमरमर में लिखा गया है वह बेचारा किसी निष्ठुर प्रेमिका द्वारा तो नहा सताया गया ? परन्तु फिर मुझे विचार आया 'कैवन ए' के सिगरेट पीने वाला एक तो क्या दस प्रेमिकाओं की निष्ठुरता सह सकता है। इस वर्ग की प्रेमिकाएं भी एक नहीं अनेक प्रेमियों को बदलने वाली सकती हैं। वह साड़ी के रंग को देख कर उस रंग को पसन्द करने वाले प्रेमी के साथ शाम बिताती है।

मेरी कल्पना में उस व्यक्ति को सिगरट पीते राख झाड़ते और फिर दियासिलाई से सिगरट जलाते देख लिया। एकाएक मैंने अपने पास का टोस्ट न कहीं भूल कर रही थी वहां कोई दियासलाई का टुकड़ा नहीं था। मैं अपनी मूर्खता पर हंस दी। विदेशी फिल्मों का नायक काम पूरा बेकदार

कोट पहनने वाला, माचिस से सिगरेट क्यों जलाता होगा। उसके पास एक सिगरेट 'लाइटर' होगा। लाइटर भी नया होगा, क्योंकि उसमें 'फ्युएल' खत्म नहीं हुआ और वह इतन सिगरेट एक दम जलाने में समर्थ हुआ। शायद यह 'लाइटर' उसे दिवाली पर उपहार में मिला होगा—तब दिवाली बीते केवल एक सप्ताह व्यतीत हुआ था।

उस पुरुष ने क्या स्वास्थ्य को ठीक रखने के विषय में कुछ नहीं पढ़ा? उसे युवक मानने को मेरा मन तैयार नहीं था, क्योंकि युवक ऐसी मनोवस्था में उत्तेजना से भर उठते हैं, वह ढेर से सिगरेट एक साथ नहीं पी डालते। इतने से सिगरेट पीने, पूरी रात भर जागने से एक बात तो स्पष्ट थी कि वह तीस वर्ष से ऊपर और चालीस के बीच रहा होगा। यह एका ग्रता यह मनन, और इतना गहन सोच वही व्यक्ति कर सकता है जिसमें मानसिक प्रौढ़ता आ चुकी हो और जो जीवन में हंसी की फुलझड़ियों की कृत्रिमता समझता हो। व्यक्ति समर्थ है उसे जीविका कमाने की कोई चिन्ता नहीं क्योंकि वह आसानी से रुपया खर्च कर सकता है और होटल में रह कर पूरे रुपये दे कर भी वह भोजन नहीं खाता। साधारण स्थिति का आदमी रुपये दे कर खायगा क्यों नहीं? उसे अपने मानसिक तूफान स अधिक अपने बटुए में से निकलने वाले रुपयों की चिन्ता होगी।

वाद विवाद में पड़ना मरा उद्देश्य नहीं, वह तो बात की बात है। मुझ विश्वास होता जा रहा था कि वह व्यक्ति आगरा

छोड़ कर चला गया है और रात भर यहाँ केवल निश्चय ही करता रहा है। अवश्य ही जीवन की बहुत जटिल समस्या रही होगी इसके सामने।

मेरा चाय का प्याला ठंडा हो गया था। मैंने खिड़की से ठंडी चाय फेंकनी चाही परन्तु बगीचे में माली को काम करते देख कमरे से सटे गुसलखाने में चली गई। चाय वहाँ फेंक दी परन्तु वहाँ भी वही सुनहरी कागज वाले सिगरेट पड़े थे। यहाँ भी वह अवश्य ही बैठा होगा। वहाँ एक "बिल" के फटे टुकड़े पड़े थे। मैंने वह उठा कर देखा तो इसी होटल का बिल था ग्यारह रुपये आठ आना रात का किराया तीन रुपये चाय के और एक रुपया सर्विस। होटल वालों ने लगभग सोलह रुपये उससे ठग लिये थे। ऊपर नाम भी लिखा था —"श्री प्रकाशचन्द्र सक्सेना। ओह! मेरी कल्पना को जरा सा धक्का लगा मेरी जासूसी के नायक का उतना ही साधारण नाम था जितना साधारण यह होटल। मेरा मन अनजाने ही विरक्ति से भर उठा। उंह! क्यों? मैं वहाँ किसी बड़े साहित्यिक का नाम चित्रकार या किसी वैज्ञानिक का नाम देखना चाहती थी! ठीक तो है। सामान्य पुरुषों के जैसे नाम होते वैसा नाम है।

मैं कमरे में लौट आई। मैं सरसरी दृष्टि से गुसलखाने की सभी वस्तुओं को देख आई थी। और मुझे कुछ नहीं मिला। वहाँ कुछ था ही नहीं।

चाय मंगाई। वह ठंडी थी। 'बैरा' को आवाज दी तो दोबारा गर्म चाय ले आया। इस बार वह बड़ी ढिठाई से हंसता

हुआ बोला—"क्यों बीबी जी, अब ता सिगरेट के टुकड़े बाहर फेंक दू ।"

मुझे लगा, यह 'बेयरा' मेरी कमजोरी जान गया है कि मैं इन सिगरेट के टुकड़ों में कुछ खोजने का प्रयत्न कर रही हू । मैंने भी फौरन उत्तर दिया, 'हां झाड़ू लाओ सब अच्छी तरह से इकट्ठे कर लो ।"

वह अपने कन्धे पर रखा मैला तौलिया फलाता हुआ बोला, "नहीं बीबी जी मैं इसी में ही सब इकटठे कर लू गा । मेरे देखते देखत उसने सिगरटों के टुकड़े सम्भालने शुरू कर दिये । मानो वह किसी गूढ़ रहस्य को मुझ से छिपाने के लिये यह सब उठाये लिय जा रहा है ।

सिगरटो के टुकड़े इकट्ठे करते ही "ऐश-ट्रे" के नीचे एक पत्र दबा हुआ मिल गया । पत्र का लिफाफा बन्द नहीं था खुला था ।

मैंने बेयरा' से आंख बचा कर वह उठा लिया । बेयरा' को शायद उस कागज के टुकड़े में काई दिलचस्पी नहीं थी । वह अपनी दिलचस्पी का सामान सिगरट के टुकडे उठा कर चलता बना । मैंने झट से वह पत्र खोला और धड़कते हृदय से पढ़ने लगी, मानो वह प्रकाशचन्द्र सक्सेना ने अपने रिश्तेदारा और मित्रों के लिए न लिख कर मेरे लिए ही लिखा हो । सब से पहले मैंने पत्र के नीचे देखा, लिखा था तुम्हारा प्रकाश । मैंने शुरू से पत्र पढ़ना आरम्भ किया ।

प्रिय उमा

मुझे अफसोस है कि विवाह के तीसरे दिन ही हम समझौता न कर पाये। तुम चाहती हो मैं सिगरेट पीना छोड़ दूं परन्तु मैं प्रयत्न करके भी सिगरेट नहीं छोड़ सकता तुम्हें मुझ से इतनी घृणा थी तो विवाह करने पर क्यों राजी हो गई थीं। तुम्हें और तुम्हारे पिता जी को पता था कि मैं सिगरेट पीता हूं। तुम्हें समझने का अवसर मिलता भावनाओं के आदान प्रदान का अवसर मिलता तो शायद मैं समझ जाता कि मुझे सिगरेट पीना छोड़ देना चाहिए और मैं शायद मान लेता परन्तु जाने क्यों तुमने मुझे अवसर ही नहीं दिया। एक दम तानाशाही आज्ञा जारी कर दी कि तुम मुझ से बोलोगी ही तब जब मैं सिगरेट छोड़ दूंगा। तो मैंमसाहब शायद तुम्हें मां ने यह ही सिखला दिया था कि तुम पति पर हुक्म चलाना सीखो। यह नहीं बतलाया था कि हुक्म देने से पहले वैसी स्थिति तो पैदा कर लो। खैर, मैं गांव जा रहा हूं वहां एक सप्ताह तक तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूंगा। यदि तुम मुझ से मिलना स्वीकार करो इसी परिस्थिति में जिस में मैं हूं स्वीकार्य हो तो मुझे लौटती डाक से पत्र लिख देना। यदि इस सप्ताह के भीतर तुम्हारा कोई उत्तर नहीं आया तो मैं समझूंगा कि तुम सम्बन्ध विच्छेद चाहती हो। यदि उत्तर न देना चाहो तो तुम स्वयं को स्वतन्त्र समझना मैं विवाद नहीं करूंगा। गांव का पता दे रहा हूं।

प्रकाशचन्द्र सक्सेना

द्वारा श्री मुरली मनोहर

मैनपुरी।

तुम्हारा

प्रकाश।

पत्र मेरे हाथ में था। चाय ठंडी हो रही थी। पत्र पढ़ कर उस प्रकाशचन्द्र के लिये मेरी सहानुभूति और बढ़ गई। मैंने पता देखा आगरा में ही राजामण्डी की एक सड़क का पता था। मैंने मन ही मन सोच लिया कि इन उमा देवी से अवश्य मिलूंगी और समझाने का प्रयत्न करूंगी। यह भारत है, अमरीका नहीं कि इन छोटी छोटी बातों पर विवाह सम्बन्ध विच्छेद हो जायें। जाने आजकल कि यह लड़कियां विवाह को एक खिलवाड़ क्यों समझती हैं। मैंने और देर करनी उचित नहीं समझी लिफाफे पर दो आने का टिकट लगा था और दो आने का मैंने अपने बटुए में से लगाकर 'बेयरा' को बुलवा कर वह चिट्ठी डाक में छोड़ने के लिए कहा। मैं नहीं चाहती थी कि इन सिगरेट के टुकड़ों की तरह ही उन दोनों के वैवाहिक जीवन के टुकड़े भी हो जायें। जाने आज भी उनका समझौता हुआ है या नहीं। जहां कहीं भी सिगरेट के टुकड़े देखती हूं तो मुझे उस घटना की याद हो आती है।

सातवीं बहन

पत्र मेरे हाथ में था। शाम ठंडी हो रही थी। पत्र पढ़ कर उस प्रकाशचन्द्र के लिय मेरी सहानुभूति और बढ़ गई। मने पता देखा आगरा में ही राजामंडी की एक सड़क का पता था। मने मन ही मन सोच लिया कि इन उमा देवी से अवश्य मिलूंगी और समझाने का प्रयत्न करूंगी। यह भारत है अमरीका नहीं कि इन छोटी छोटी बातों पर विवाह सम्बन्ध विच्छेद हो जायें। जाने आजकल कि यह लड़कियां विवाह को एक खिलवाड़ क्यों समझती हैं। मैंने और देर करनी उचित नहीं समझी लिफाफे पर दो आने का टिकट लगा था और दो आने का मैंने अपने बटुए में से लगाकर 'बेयरा' को बुलवा कर वह चिट्ठी डाक में छोड़न के लिए कहा। म नहीं चाहती थी कि इन सिगरेट के टुकड़ों की तरह ही उन दोनो के वैवाहिक जीवन के टुकड़े भी हो जायें। जाने आज भी उनका समझौता हुआ है या नहीं। जहां कहीं भी सिगरेट के टुकड़ देखती हूं तो मुझे उस घटना की याद हो आती है।

सातवीं बहन

पत्र मेरे हाथ में था। चाय ठंडी हो रही थी। पत्र पढ़ कर उस प्रकाशचन्द्र के लिये मेरी सहानुभूति और बढ़ गई। मने पता देखा आगरा में ही राजामंडी की एक सड़क का पता था। मैंने मन ही मन सोच लिया कि इन उमा देवी से अवश्य मिलूंगी और समझाने का प्रयत्न करूंगी। यह भारत है, अमरीका नहीं कि इन छोटी छोटी बातों पर विवाह सम्बन्ध विच्छेद हो जायें। जाने आजकल कि यह लड़कियां विवाह को एक खिलवाड़ क्या समझती हैं। मने और देर करनी उचित नहीं समझी लिफाफे पर दो आने का टिकट लगा था और दो आने का मैंने अपने बटुए में से लगाकर 'बेयरा' को बुलवा कर वह चिट्ठी डाक में छोड़ने के लिए कहा। मैं नहीं चाहती थी कि इन सिगरेट के टुकड़ों की तरह ही उन दोनों के वैवाहिक जीवन के टुकड़े भी हो जायें। जाने आज भी उनका समझौता हुआ है या नहीं। जहां कहीं भी सिगरेट के टुकड़े देखती हूं तो मुझे उस घटना की याद हो आती है।

सातवीं वहन

मां की एक लम्बी चीख सुनकर शोभा के हाथ से पंखा छूट गया वही पंखा जिस से वह चूल्हा सुलगा रही थी।

चूल्हा किसी तरह से सुलग ही नहीं रहा चाहे शोभा इतनी कोशिश कर रही है। इस बार की चीख इतनी हृदय विदारक थी कि शोभा के हाथ से पंखा छूट गया। शोभा के हाथ अभी भी कांप रहे हैं माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगीं। शोभा ने चूल्हे के निकले आग को चिमटे से हिलाया जल्दी में चिमटा शोभा के पांव पर गिर गया।

मां कराह रही है। सातवीं बार कराह रही है। रात का पिछला पहर। रात भी और प्रात भी भीगी धुंधली ओस भरी नवम्बर की प्रात। प्रात के सन्नाटे में मां की चीखें बहुत जोर से सुनाई दती हैं।

मां की दबी-दबी मुंह में ठूंसे हुए कपड़े से दबी आवाज शोभा तक आ रही है। चीखें दूर तक न सुनाई दें इसीलिए

उसने मुंह में कपड़ा ठूंसा हुआ है।

शोभा सोच रही है मातृत्व भी कभी भार हो सकता है। उसकी मां अवश्य सोच रही होगी वह मां कभी न बनती। काश! शोभा कभी पैदा न होती और फिर शोभा के साथ उसकी पांच बहनें और। दो नहीं तीन नहीं इकट्ठी छः हैं। इन्हीं छः को देखकर शोभा के पिता झुंझला उठते हैं जैसे कोई किसान अपनी पकी फसल के खेत में वर्षा होते देख घबरा जाता है।

मां फिर चीखीं।

आह! मां चिल्ला रही हैं।

मां तो पूजनीय हैं। शोभा ने ऐसा पढ़ा है। मां वन्दनीय हैं। शोभा ने ऐसा सोचा है। मां के साथ नीच व्यवहार भी किया जा सकता है शोभा ने ऐसा देखा है।

शोभा की बुआ कन्या का जन्म होने पर यही कहती हैं 'भया घबराओ नहीं अभी कौन बूढ़े हो गये हो। सारा जीवन पड़ा है। अब की नहीं अगली बार लड़का जरूर होगा। हनुमान जी को प्रसाद चढ़ायेंगे।

भया भी पीठ पर बहिन का सहारा पा हनुमान जी का ध्यान कर प्रकृति को चुनौति दे देते।

फिर अबोध कन्या का जन्म होता। शोभा सुनती एक और बहन आई है। उसका हृदय धड़कने लग जाता। शोभा ने सुन रखा है जब वह पैदा हुई थी तब उसके पिता ने उसकी नीली आंखों को देखकर मित्रों को मिठाई खिलाई थी। उन्होंने

जैसी बहनों को सहायता दे। कोई न कोई नौकरी कर ले तो
बुआ अनाज ! अनाज !! चिल्लाती हैं। अनाज का ढिंढोरा
पीटती हैं।

मां कराहती जा रही है। अभी तक कुछ हो ही नहीं
रहा। पिता जी उफ़ ! हे भगवान ! क्या वह छत पर हैं ?
उनके भारी-भारी कदम छत पर चहलकदमी कर रहे हैं।
सड़क की प्रतीक्षा में घड़ियां गिन रहे हैं।

पड़ोस में एक बंगाली बाबू हैं। शोभा ने उसकी लड़की
को देखा। वह अपने लम्बे-लम्बे बाल खोले स्वच्छन्दता से गली
में घूम रहा था। बुआ उसे देखते ही बोलीं थीं 'यह देखो
बाजार की जादूगरनी। मेरी लड़की होती तो गला घोंट देती।
शोभा को कुछ झुंझलाहट हुई। उसका संसार इन दीवारों और
छोटे बहनों को लेकर ही है। यदि वह खिड़की में खड़ी होती तो
बुआ डांटती। पर यह घर के भीतर देखती तो केवल यही
देखती उसकी मां बच्चों को दूध पिला रही है। बुआक गाय
की टांग पकड़ती है माथ हिलाती है। परन्तु शोभा की मां सदैव
मौन रहती है। फिर बच्चों के दांत निकलते। रात-रात भर
मां लोरियां सुनाती। बच्चों को गोद में लिये लिये घूमती और
फिर उसी मां को दुख होने लगता। वह मैं करके लगती। पीली
पीली पड़ जाती। शोभा देखती मां का पेट बढ़ रहा है। वह
बड़ी मुश्किल से चल रही है। मां बारबार सांस भरती है।

मां बाहर क्यों नहीं आ सकी यह कैसा जीवन है ? शोभा
को घबराहट होने लगी। उसकी अंगुलियां जो अभी पंखा चला
रही थीं अब ऐंठने लगीं। उसका जी चाहा उठ कर पिता का
गला घोंट दे। बुआ का गला घोंट दे जो पिता को उकसाती
रहती है।

अनिष्टकारक हुआ। उसे अपनी बहन से भी घृणा हो जाती फिर उससे सहानुभूति भी होती कि यह सुन्दर भोला सा नन्हा सा रक्त मांस का टुकड़ा जिस ने एक व्यक्ति के लड़का होने के प्रयोग में जन्म लिया है उसका क्या दोष ? उसे भी तो इसी घर में रह कर निर्वाह करना है।

कुछ दिनों के बाद जब मां बिस्तर से उठ जाती तब किसी लड़की को पीटती ही रहती। अपने मन के ज्वालामुखी का तूफान उन बालिकाओं पर निकालतीं।

आज मां फिर कराह रही हैं। न जाने आज क्या होगा ?

शोभा ने देखा, पानी उबलने लगा है। पानी में भाप निकल रही है।

शोभा के हृदय में भी ऐसी ही बेचनी है। उसका दम घुट रहा है हृदय धुक-धुक चल रहा है, धौंकनी की तरह। शोभा को मैट्रिक तक शिक्षा मिली है। कुछ उसने मां से लुक-छिपकर किताबें भी पढ़ी हैं। मुहल्ले की स्त्रियों की जब मजलिस लगती है तब वह अश्लील और भद्दे मजाक सुने हैं जिन सबका अर्थ वह समझती है। उस पता है, बच्चा कसे और क्यों जन्म लेता है।

कइ बार शोभा अपने पिता की ओर देखती तो उसे यों लगता, माना वह ऐसा कुत्ता है जो कूड़े को बार-बार सूंघता है। उस समय शोभा का अपने बाप से घृणा हो जाती। कोई छोटी सी नौकरी भी तो बुआ नहीं करने देतीं। जब जब शोभा ने चाहा है वह इन बिलबिलाती रेंगती कीड़े मकोड़ो

समस्या उलझती गई

ओह ! मां ने एक दो तीन चार न जाने कितनी चीखें एक साथ लीं और फिर शान्त। तभी नवजात शिशु की आवाज सुनी–ट्याहां ट्याहां। चिर परिचित आवाज। जिसे वह कई बार सुन चुकी है।

उस कमरे का दरवाजा खुला उसकी बुआ चिल्लाई गरम पानी, ला जल्दी कर। देखती क्या है। तुम रांडों ने तो मेरे फूल से भाई को घेर रखा है। पहले क्या कम थीं जो एक और आ गई।"

शोभा की टांगें लड़खड़ा गईं। सिर घूमने लगा बुआ बुड़बुड़ाती हुई पानी लेकर चली गई। शोभा को ऐसे लगा मानो ससार ही अन्धकारमय है। जीवन जैसे एक जुआ है जिस में बेचारी मां इतना कष्ट पा कर भी बार बार हार जाती है।

एक और बहन ! सातवीं बहन !! शोभा के छोटे कपड़े दूसरी पहनती दूसरी के तीसरी और अब छठी के सातवीं पहनेगी। चीथड़े बढ़ते जायेंगे। सुबह जो लड़कियों को चाय मिलती है उसका दूध और भी कम हो जायगा। दाल में पानी भी बढ़ जायगा। राशन कार्ड पर एक और नाम लिखा जायगा। पिता जी वह कसाई। मां की कठोर वाणी। शोभा ने देखा उसके पिता ऊपर से नीचे आ गये हैं। शोभा का शरीर भय से बरफ हो गया। घृणा से उसने शरीर को झटका दिया। शोभा को साहस न हुआ कि वहां जाकर वह सातवीं बहन को देखे या पिता का सामना करे। अनजान में ही उसके पैर घर की ड्योढ़ी से बाहर निकल गये। शोभा को लगा उसका दम घुट जायगा। उसकी सांस मुश्किल से निकल रही है वह कहीं खुली हवा में सांस ले।

समस्या उलझती गई

निशा बालों में फूल टाँकने जा रही थी क्योंकि पति के साथ एक दावत में जा रही है। सफेद जार्जेट की सितारों वाली साड़ी सफेद ब्लाउज गले में मोतियों की माला। वेणी टाँकते समय उसने शीशे में देखा। वह स्वयं स्तम्भित रह गई। वह भी सुन्दर लग सकती है, इस का अनुमान उसे नहीं था।

पति किशोर ने सहायता की थोड़ी सी। फूलों की वेणी उसने लगा दी।

"आज तुम अच्छी लग रही हो। किशोर ने किंचित मुस्कराते हुए कहा।

निशा के हृदय में खलबली हुई जैसे किसी ने गरम चाय की प्याली मन पर उंडेल दी हो। काश! राजा भी देखता वह इतनी सुन्दर दिखाई दे सकती है।

पिछले कुछ महीने से निशा राजा की ओर खिंची चली जा रही है। राजा उसे अच्छा लगता है।

एक बार निशा को लगा था बह पति के मित्र मेहता के बहुत निकट आ गई है। उस भावना पर कुछ ही महीनों में निशा ने काबू पा लिया था। मेहता और श्रीमती मेहता उनके मित्रों में से हैं।

किशोर निशा से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है। निशा सर्वत्र उस के सुख दुख में साथ देती है। निशा के कल्पना प्रधान मस्तिष्क में कभी-कभी कोई विचार उठ जाता तो वह तूफान खड़ा कर देता। वह महीनों उस भावना से परेशान रहती। यदि वह समाज सुधार, प्रौढ़ शिक्षा नारी उत्थान आदि में प्रेरित भावना होती तो किशोर बहुत प्रोत्साहन देता। यदि उस से भिन्न प्रकार की दिलचस्पी होती तो वह उपेक्षा भी करता। कभी कभी निशा को किसी सम्बन्धी की चिन्ता इतनी सता जाता कि दिन रात उस सम्बन्धी के विषय में सोचती उनकी सहायता देने के उपाय निकालती।

निशा का बचपन बहुत दुखी बीता था। उसमें प्यार का नितान्त अभाव था। इसीलिए निशा संवेदनशील अधिक थी। हवा की सरसराहट जैसी हल्की बात कभी उसके मर्म को छू जाती और कभी कम स बड़ु बात भी उसे प्रभावित न करती। किशोर उसे प्यार करता पति जितना पत्नी से कर सकता मित्र जितना मित्र स पुरुष जितना नारी स। फिर भी निशा का मन सदैव प्यार की खोज में भटकता रहता। उसके मानस पट पर अनेक स्नेह बर रेखा-चित्र बनते और मिट जाते। उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता—जैसे पड़ोसी का छोटा सा

किशोर ने कहा—"क्यों, पहले से ही देर हो रही है, तिस पर तुम अपनी रूप की स्वयं प्रशंसा करने लगीं।

निशा ने उत्तर नहीं दिया, केवल इतना कहा—'चलो देर हो रही है न।"

दावत में सब को आशा थी, निशा बातचीत करेगी। उस के पति के मित्र श्री तथा श्रीमती खन्ना कोई भी दावत निशा के बिना पूरी न समझते। आज भी अपने अन्य मित्रों के साथ उन्होंने निशा और किशोर को बुलाया था।

निशा और दिनों से आज विशेष सावधानी से कपड़े पहन कर आई थी। न जाने क्या प्रेरणा थी ? कोई भी उपस्थित व्यक्ति न समझ सका।

श्रीमती लाल ने निशा से बातचीत जमाने का प्रयत्न किया। सफल न हो सकीं। किशोर बातचीत में व्यस्त था। निशा का ध्यान बार-बार राजा की ओर जाता। वह वहां उपस्थित पुरुषों में राजा को देखने का प्रयास करती। परन्तु एक भी ऐसा नहीं था उनमें जो राजा के निकट पहुंच सकता हो।

इस घटना से निशा के मन पर एक अजीब प्रभाव पड़ा। वह अनुभव करने लगी राजा अनायास ही उसकी चेतना भावना और उपस्थिति का एक अंग बन गया है। निशा और किशोर के ब्याह को काफी बरस हो गये हैं। परिवार में दो बच्चे भी हैं। किशोर साधारण मध्यम श्रेणी का अफसर है। निशा भी एक सरकारी दफ्तर में काम करती है। राजा उस का सहकारी है।

एक बार निशा को लगा था वह पति के मित्र मेहता के बहुत निकट आ गई है। उस भावना पर कुछ ही महीनों में निशा ने काबू पा लिया था। मेहता और श्रीमती मेहता उनके मित्रों में से हैं।

किशोर निशा से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट है। निशा सदैव उस के सुख दुख में साथ देती है। निशा के कल्पना प्रधान मस्तिष्क में कभी-कभी कोई विचार उठ आता तो वह तूफान खड़ा कर देता। वह महीनों उस भावना से परेशान रहती। यदि वह समाज सुधार, प्रौढ़ शिक्षा, नारी उत्थान आदि में प्रविष्ट भावना होती तो किशोर बहुत प्रोत्साहन देता। यदि उस से भिन्न प्रकार की दिलचस्पी होती तो वह उपेक्षा भी करता। कभी कभी निशा को किसी सम्बन्धी की चिन्ता इतनी आ जाती कि दिन रात उस सम्बन्धी के विषय में सोचती उनको सहायता देने के उपाय निकालती।

निशा का बचपन बहुत दुखी बीता था। उसमें प्यार का नितान्त अभाव था। इसीलिए निशा अतिसंवेदनशील अधिक थी। हवा का सरसराहट भरी हुई सी बात कभी उसके मर्म को छू जाता और कभी कटु से कटु बात भी उसे प्रभावित न करती। किशोर उसे प्यार करता पति जितना पत्नी से कर सकता मित्र जितना मित्र से पुरुष जितना नारी से। फिर भी निशा का मन अनन्त प्यार की खोज में भटकता रहता। उसके मानस पट पर अनेक स्नेह भरे रसाप्लावित बनते और मिट जाते। उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता—जैसे पड़ोसी का छोटा सा

पिक्नीज कुत्ता, अपनी हरी साड़ी, चमड़े के रंग का बटुआ। तीसरी मंजिल वालों की माँ। उस बुढ़िया से निशा को इतना लगाव है कि जब-जब निशा काम से लौटती, वह बुढ़िया सन्ध्या को आ कर बतलाती आज रामायण से कथा पढ़ी है तो कल महाभारत से। घंटों चर्चा होती यह भी निशा की स्नेह पात्र है। इन्हीं बुढ़िया जी की एक बेटी है उस का पति शराबी है, मार-पीट करता है। निशा उस विषय में भी पूरी पूरी सलाह देती आज ऐसे करना कल यह धमकी देना परसों खाना अपने हाथ से खिलाना। जिस किस तरह पति को वश में करने के उपाय बतलाती।

किशोर उसके मित्रों तथा परिचितों की विभिन्नता देख कर कहते 'तुम्हारा हृदय चिड़ियाघर है और दिमाग भानमती का पिटारा या किसी पुराने वक्त जा द्वारा छोड़ी गई पुस्तक जिस में प्रत्यक व्यक्ति के लिये स्नेह है उसक प्रश्न का उत्तर है और आवश्यकता पड़ने पर उसकी जरूरत के लिए सामान भी है। ऐसी निशा को एक दिन लगा उसका सहकारी राजा उसे अतीव प्रिय है।

निशा ने इसे अपनी हार माना। उसका हृदय एकाएक उदास हो गया। यह कैसी बात है यह ता न समझती थी जीवन में कभी ऐसा भी होगा। वह काम पर आती तो जैसे हाता राजा से मुंह चुराती। घंटों इस विषय में सोचती। बीस वर्ष पहल माता-पिता के लिए वह लड़की-लड़का उलझन हुआ करते थ जो माता पिता की राय के विरुद्ध विवाह करना चाहते

रहता है और तुम केवल अपने मन की कल्पनाओं में ही नहीं रहतीं, धरती पर भी थोड़ी देर के लिये उतर आती हो। धरती पर आने से ही मेरे अस्तित्व का तुम्हें अनुभव होता है।'

निशा सोचती राजा का आकर्षण भूल पाना उसके वश की बात नहीं। आज के युग में जब नारी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर काम करने लगी है तो ऐसा आकर्षण स्वाभाविक है चाहे वह मर्यादा के बन्धनों से बंधा हो।

प्रबोध, दो चार दिन के सहवास से निशा की ओर खिंचता गया। वह हर बात में निशा की तारीफ करता, खाने के समय सैर के समय। एक दिन प्रबोध किशोर और निशा कैम्टी वाटर फाल देखने गये। निशा बहुत थक गई थी। वह फाल के पास पहुँच पत्थर पर बैठ गई। किशोर और प्रबोध स्नान करने लगे। निशा ने प्रकृति के सौन्दर्य में मन लगाना चाहा। स्नान करते करते प्रबोध उसके पास आ गया। पानी का छींटा निशा पर मारता हुआ बोला 'तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो, निशा।

किशोर को देखा है प्रबोध वह तुम्हारा मित्र है। मैं अभी उसे कह देना चाहती हूँ जो तुमने मुझ से कहा है।

प्रबोध का मुख लाल हो उठा। मैं तुम्हें शिक्षित महिला समझता था निशा तुम वैसी की वैसी निकलीं, अशिक्षित और गंवार।

'हाँ तुम जैसा चाहो कह सकते हो। मैं कुछ न कहूँगी।'

"देखो देहली आकर भी मैं तुम लोगों से खूब मिला करूंगा।

"अवश्य मिलना" निशा ने सभ्यता-वश कहा फिर चुप हो गई।

किशोर ने स्नान करने के बाद चाय मांग मांगी। निशा होटल से सब कुछ लेकर चली थी। प्रमोद फिर निशा की प्रशंसा करने लगा।

निशा ने ज़रा कोप से किशोर को देखा — 'सुना तुमने ?"

किशोर हंस दिया बोला— सच कह रहा है प्रमोद।

निशा का ध्यान फिर एक बार राजा की ओर गया। न जाने वह इस समय क्या कर रहा होगा। निशा को अपने पर मुस्कराहट भी हुई। वह क्यों इतना सब सोचती है? राजा तो शायद इतना न सोचता होगा। राजा ही तो शुरू-शुरू में उसके पास आकर बैठता था। वह अपना काम कर लेती। दोपहर का खाना लेकर वह निशा की मेज़ पर ही आ जाता। दोनों साथ साथ खाते। बहुत से विषयों पर बातचीत होती। धीरे धीरे परिचय बढ़ने लगा। एक दिन निशा को एक अन्य सहकर्मी ने बतलाया राजा विवाहित है पत्नी साथ नहीं रखता किन्हीं कारण उनकी आपस में नहीं पट सकी।

निशा ने सुना तो उसके मन में राजा के लिये बड़ी सहानुभूति जाग उठी। उसे एकाएक विचार आया तभी राजा जीवन के प्रति इतना कटु है। उसकी कोई बात ऐसी नहीं होती जिसमें कटुता का पुट न हो।

निशा उस कटुता को न देख उसकी हंसी की ओर ध्यान देती-ऐसी हंसी जिसकी गूंज से दीवारें भी हंसने लगतीं। उन्मुक्त

हसी जिसे कभी-कभी हसी न कह कर अट्टहास का रूप दिया जा सकता है। निशा के विचार में अट्टहास उस चिरपीड़ा पर एक सामाजिक आवरण है जिसे व्यक्ति अपने परिचितों से छिपाकर रखना चाहता है। ऐसा निशा ने राजा से कहा था। वह मुस्करा दिया था, ऐसी मुस्कराहट जिस पर निशा अपनी सौ इच्छाए न्योछावर कर सकती है।

उस दिन आकाश बादलो से घिरा था। उन्मादी बादल, जिन्हें देख मोर नाचता है और कोयल कूकती है विरहण रोती है, किसान सौभाग्य पर मुस्कराता है।

निशा का मन काम काज में नहीं लग रहा था। वह इसी प्रतीक्षा में थी राजा का काम कब समाप्त हो और वह आय। दोपहर हुई राजा खाना खाने के समय उसकी मेज पर आया।

आज बादलों से आकाश घिरा है।

हां यह तो मैं भी देख रहा हूं।

'क्या बादल आपको अच्छे नहीं लगते।

'नहीं मैं अकेला हूं।

राजा ने केवल इतना ही कहा था। निशा का मन राजा का हो गया।

अभी और न जाने कितनी छोटी-छोटी घटनाओं को निशा सोचती जाती। वह घटनाय मधुर स्मृति बन निशा के मन से बंधी हैं।

किशोर ने होटल लौट चलने का प्रस्ताव किया। वह निशा की विचित्रता पर हैरान हो रहा था। यह कैसी हो

गई है ? इने बच्चों से बिल्कुल मोह नहीं रहा। दिन भर से व्यस्त रहती है। किशोर पत्नी की इस उपेक्षा से चिढ़ गया। होटल लौटते ही उसने कहा "हम लोग कल पहली मोटर से वापिस चलेंगे।"

निशा ने भी सोचा ठीक है यहाँ समय व्यर्थ होता है। सोचते-सोचते उसका मन भी भटकता है किशोर को भी कोई काम नहीं। यदि वह व्यस्त रहे तो निशा के मानसिक उतार-चढ़ाव की ओर उसका ध्यान कम जाता है। किशोर ने भी नहीं पूछा तुम आजकल किस विचार का सफर व्यस्त रहती हो।

छुट्टी खत्म कर निशा ने पुनः अपने काम में मन लगाया। घर पर भी वह पड़ोस के दो बच्चों को मैट्रिक की परीक्षा की तैयारी करवाने लगी। राजा भी एक मास की छुट्टी अपने गांव गया। वह वहाँ से अपने सहकारी प्रदीप को पत्र लिखता रहता। निशा को भी उसमें पत्र में नमस्कार और पत्र लिखने का अनुरोध करता रहा। निशा शीघ्रग्राही थी। उस राजा के व्यवहार में खोट लगा।

निशा सोचती पुरुष को जब यह अनुभव हो जाता है कि इस नारी पर मैंने विजय पा ली है, तो वह शायद नई की तलाश में जाता है।

निशा ने प्रयत्न आरम्भ कर दिया वह राजा से मन ओझल कर रही। उसका अपना पति है बच्चे हैं भरापूरा परिवार है। उसे क्या पड़ा है राजा का विचार करे और राजा

का अपनी मानसिक तथा पारिवारिक शान्ति भंग करने दे।

उर्मिला निशा की अतीव प्रिय सखी है। दोनो बचपन से दूसर को जानती हैं। उर्मिला न विवाह किया था परन्तु चार वष बाद पति को छोड़ दिया था, क्योकि वह एक अन्य पुरुष का पसन्द करने लगी थी। वही उर्मिला जो कालेज में गान्धी जी की फिलासफी तथा सयम की बातें करती उसके मुख पर श्रोज का दीप जगमगाया करता था, वह अपन वर्तमान जीवन स इतनी श्रीहीन हो गई थी, वह कान्ति दीप बुझ गया था, केवल कालिख रह गइ थी जहाँ तहाँ उसकी आँखों के नीच। निशा उसे दखती तो दु ख होता। परन्तु यह सब नई सभ्यता की दन ह।

उर्मिला मे एक बार निशा ने पूछा था— यह आजकल ऐसा क्या हो रहा है कि पत्नी एक पति स या पति एक पत्नी से पूण स तुष्ट नहीं रहत विशषकर इन बडे-बडे शहरों में, देहली में बम्बई मद्रास में।

उर्मिला बोली थी— 'कलकत्ता कौन कम है?'

हाँ मेरा मतलब सभी बड़े शहरो से है।

शायद अब पति पत्नी को केवल बच्चे पदा करने की मशीन नहीं समझता। और पत्नी भी एक पति में पूर्ण पति के गुण नहीं देख पाती। उसकी कल्पना के नायक स वह कुछ कम होता है।

निशा को यह बात अच्छी नहो लगी थी। उसका मन घृणा से भर उठा था। वह कभी बहुपति की बात सोच भी नहीं सकती। उसकी समस्या तो केवल यही थी कि वह राजा को मित्र मानने लगी है।

निशा अमेरिका की बात सोचती जहाँ पल-पल में तलाक होते हैं। पर वह अभी किशोर को तलाक नहीं दे सकती। बच्चों को छोड़ नहीं सकती। सामाजिक मर्यादा की कड़ियाँ तोड़ने का साहस उसमें नहीं।

राजा छुट्टी से लौटा तो दो तीन ही दिन में उसने निशा को अपनी ओर कर लिया। निशा फिर उधर झुकने लगी। उसके निश्चय धरे रह गए।

श्री चतुर्वेदी निशा के अफसर थे। वह भी चाहते थे निशा उनके कमरे में अधिक से अधिक आया करे। वह राजा से जलने लगे। उनके कान में भी यह खबर पहुँची कि निशा और राजा में मैत्री बढ़ती जा रही है। उन्होंने एक दिन पूछ ही तो लिया—"क्या निशा तुम विवाहित स्त्री हो फिर राजा से तुम्हारी इतनी घनिष्ठता। तुम्हारे पति को मालूम पड़ेगा।"

निशा को पुरुष की इस मनोवृत्ति पर खीझ हुई। मैं इनसे अधिक निश्चिन्त बोलती नहीं इस लिए यह ऐसा आक्षेप कर रहे हैं। निशा ने भी निधड़क होकर उत्तर दिया—"मैं कोई बात पति से छिपा कर नहीं करती। राजा मेरे घर कई बार आ चुके हैं। परन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आई। जहाँ दो साथ काम करने वाले पुरुषों में पारस्परिक समझौता हो सकता है वहाँ एक पुरुष और नारी में जरा सी मित्रता हो जाय तो आप लोग अनुचित समझते हैं।

चतुर्वेदी जी बड़े मंजे हुए खिलाड़ी थे। वह ऐसा मौका क्या जाने देते तुरन्त बोले—"पुरुष-पुरुष की बात पुरुष-नारी

की बात से भिन्न है। जहाँ पुरुष-पुरुष में बौद्धिक समझौता होता है वहाँ पुरुष नारी में हृदय का सौदा होता है।'

निशा का मुख लाल हो उठा, बोली—"आप मेरा अपमान कर रहे हैं।"

चतुर्वेदी जी को नौकरी भी प्यारी थी, निशा की उद्दंडता तथा निर्भीकता से पूर्ण परिचित थे। कहीं जाकर किसी अफसर से कह देगी तो बिचारों की आबरू मिट्टी में मिल जाएगी।

निशा उस दिन क्रोध से तिलमिला रही थी। कमर में आते ही उसने राजा से कहा—' आप किसी दूसरे कमरे में क्यों नहीं बठते ? सुपरिन्टेंडेंट भी तो आप से कह रहा था कि आप उसके कमर में चले जायें।'

राजा के मुख पर मुस्कराहट फल गई बस डर गई ? इतने से ही।

'नहीं डरी नहीं मुझे लोक लाज का भी ख्याल है।

दूसरे कमरे में बठने से क्या मैं दिल से भी दूर हो जाऊंगा '

' शायद। अविश्वास स निशा ने राजा की आंखों में देखते हुए कहा।

मैं कल ही कमरा बदल लूगा यदि उससे समस्या सुलझ जाये।

यह कह राजा निशा के पास स उठ कर अपनी सीट पर चला गया। निशा सोचती रह गई अपनी बात समाज की बात चतुर्वेदी की बात स्वार्थ की और बदलती हुई गति की बात नयी चाल की व्यक्तिगत समस्या की।

भगवान् जल गया

भगवान् जल गया

पूर्व में सूर्य की लाली से नहीं वरन् उत्तर में मन्दिर के जलने से आकाश लाल हो उठा था। लपटें उठ-उठ कर पास के वर्षों पुराने पीपल के पेड़ को छू रही थीं। मन्दिर के बाहर बहुत सी भीड़ जमा हो रही थी। लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। गांव के इतिहास में यह पहली घटना थी। गांव वालों ने न कभी ऐसा सुना था न जाना था। सेवाराम को एक दो आदमियों ने पकड़ रखा था। वह रह रह कर अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करता परन्तु उसका कमज़ोर क्षीण शरीर उसी तरह विवश होकर रह जाता जैसे पिंजरे में बन्द जानवर लोहे की जाली से टकराकर, फिर पीछे हो जाता है।

"मुझे छोड़ दो मैं इस पापी का खून कर दूंगा मैं इसका गला घोंट दूंगा।"

भीड़ में एक आवाज़ उठी—"पुजारी पापी नहीं है, तुम पागल हो चाहे कुछ चाहे सब सत्यनाश।"

"सब इस पुजारी की बदमाशी है"—पीपल के नीचे से किसी युवक ने कहा।

एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई सब गाँव वालों को शान्त करने लगी।

"नहीं, कलयुग है, भगवान् की मूर्त्ति से आग की लपटें निकल रही हैं। ऐसा कभी किसी न देखा है, ऐसा कभी किसी ने सुना है ? आज कल जो हो, वही कम है।"

"सब इस पुजारी की बदमाशी है।"

"नहीं, उस चुड़ैल चम्पो ने मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया।"

भंगिया की एक टोली किसी कोने से बोली, "नहीं, चम्पो मीरा स कम नहीं थी, उसे भगवान् ने शरण दी ।

' अधिक बात न करो, मीरा को बदनाम न करो। ऐसी बात जबान से निकाली तो जबान खीच लूगा।"

बीसियों आदमी एक साथ बोल रहे थ, किसी को कुछ सुनाई ही नहीं देता था।

सेसराज पुन चिल्ला उठा उसकी आवाज में दीवारों में छेद करने वाला क्रन्दन था। भीड़ में सभी तरह के लोग थे, पंडित, भगी और किसान। चम्पो की मृत्यु का बदला यह अवश्य लेंगे। भगवान् खुद भी लेंगे। नहीं, वह स्वयं तो ले रहे थे। पत्थर की मूर्ति जल रही थी, भगवान् गाँव भर से रूठ गये थे। काठ की मूर्ति नहीं पत्थर की मूर्ति स लपटें निकल रही थीं। ऐसा कभी हुआ था ?

सेसराज के बच्चे माँ का पुकार रहे थ। पहली बार

जीवन में उसने भी अनुभव किया कि वह दोषी है। चम्पो की मृत्यु में उस का भी हाथ है। चम्पा ऐसे ही मरने वालों में से न थी यह सब ससराज के पापों का फल है। सिवाय पुजारी राधेमल के......या शायद भगवान् के जो अपना रोष प्रकट कर रहे थे अब तक यह कोई नहीं जानता था कि चम्पा की मृत्यु क्यों हुई कैसे हुई। छोटा पुजारी चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था "सेसराज अपराधी है चम्पो ने आत्महत्या कर ली है। ससराज के अत्याचारों से तंग थी।

गांव के एक बूढ़े बाबा ने आगे बढ़कर कहा—"चम्पो ने आत्महत्या कर ली है तो पुजारी को कांपने की क्या बात हो सकती है। भगवान् शाप दे रहे हैं पुजारी को नहीं चम्पा को। पाप वालों का।"

ससराज के दादा-परदादा भंगी रहे होंगे। परन्तु उसके पिता दरबानी का पेशा करते थे उन्होंने एक घोड़ा भी रखा था। सेसराज ने भी घोड़े का काम ही किया। उस इलाके में सिख दरबान ही अधिकतर थे। ससराज के पिता को मरे भी दस वर्ष होने को आये थे। उसने पिता के समय से ही घोड़े पर काम करना शुरू कर दिया था। परन्तु फिर भी दरबान पेशा के नाम उसे अच्छा न समझते थे। उनकी आंखों में सदैव भंगीपन खटकता था। ससराज के घर का दूसरे दरबान पानी भी न पीते थे। उनके शादी-ब्याह में उसे न्योता मिलता था परन्तु सब से हट कर अलग बैठाया जाता था।

सेसराज और भी गांव वालों की आंख की किरकरी बन गया जब वह चम्पो का ब्याह कर लाया। भरा हुआ शरीर,

मझोला कद, दो बड़ी बड़ी प्रश्न भरी कजरारी आँखें और सुन्दर उठी हुई नाक, नमकीन सांवला रंग, पतले नोकदार ओंठ और उन पर निमन्त्रण देता हुआ एक बड़ा सा तिल। दूसरे तरखानों को उसी दिन लखराज से चिढ़ हो गई। वह मन ही मन उससे जलने लगे। छः वर्ष बीत गये। प्रत्येक वर्ष चम्पो गर्भवती होती और एक सुन्दर स्वस्थ बच्चे को जन्म देती। वह तीन नटखट लड़के और एक गुड़िया सी लड़की की माँ बन चुकी थी। बच्चे जनने से चम्पो के सौन्दर्य में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई थी। वह वैसी ही सुन्दर थी, जैसी लेखराज ब्याह कर लाया था। गांव वाले अभी भी जलते थे।

लेखराज तीन चार रुपये रोज कमा कर लाता चम्पो बड़ी जुगत से खर्च करती और कुछ न कुछ बचा लेती। गांव के कई ऐसे बड़े बड़े लोग भी थे जिन्हें लखराज की उन्नति देख बड़ी जलन होती। लेखराज के बच्चे और पत्नी किसी ऊंची जात वाला के परिवार वालों से कम न थे।

धीरे-धीरे लेखराज ने एक गाय मोल ले ली। जिस दिन गाय उसके घर आई, अन्य पेशावर तरखानों के हृदय पर सांप लोट गया। उन्होंने तय किया इसका नाश किसी न किसी प्रकार करना होगा। आखिर उनकी सभा हुई और उनके योजना शील दिमाग में यह बात आ ही गई। धीरे धीरे गांव के गुड मेहर की मित्रता लेखराज से बढ़ने लगी। वह उसे गुरादेवो की आराधना सिखलाने लगा।

पहले लेखराज काम से सीधा घर आ जाता था, शरबत पानी पीकर सुस्ता लेता। अपनी पूरी कमाई पत्नी चम्पो के

हाथ पर रखता था। अब वह रात बीते लौटता शराब के नशे में चूर। चम्पा कुछ पूछती, तो वह उसे पीटने लगता गालियां बकता। चम्पा आकाश की ओर देखती वहां कोई परिवर्तन नहीं था। जैसे आकाश में तारे उसी तरह खिले थे, जैसे पहले खिलते थे; हवायें भी उसी तरह चलती थीं। पूरा गांव वैसे ही बस रहा था। खेत लहलहा रहे थे। कोल्हू के चलने की चूं चूं भी अभी तक उसी तरह ही आती जैसे पहले आती थी। केवल परिवर्तन था तो सेवराज के व्यवहार में।

सेवराज कभी काम पर जाता कभी न जाता। धीरे धीरे उसके ग्राहक घटने लगे। काम कम मिलने लगा, शराब की आवश्यकता बढ़ने लगी। यदि चम्पा कुछ कहती तो सेवराज डांट देता मौका पाकर वह उसे पीटने भी लगा था। चम्पा के जीवन में यह जो तूफान आया इसने उसकी शक्ति को चूर कर दिया। उसके वश में नहीं था कि वह इसका कोई उपाय करती।

चम्पा के नटखट लड़के अब चुप करके दुबक के रसोई के एक कोने में बैठा करते। पिता को देख कर रसोई घर में छिप जाते। मां की गोद में मुंह छिपाने के लिये उसका आंचल घसीटते। चम्पा अपनी कजरारी आंखों से जिनका तेज बहुत कम हो गया था आंसू बहाती रहती। ऐसा भी समय था जब लोग उससे ईर्ष्या करते थे अब वह अपनी सखी सहेलियों से मुंह चुराती।

गांव के सुनार से दूसरे तीसरे महीने चम्पा कुछ बनवाती

रहती थी। अब वह आठवें दसवें दिन कुछ न कुछ बेचती रहती। नहीं तो घर का खर्च कैसे चलता ? वह अब दूसरों के खेतों में मजदूरी भी करने लगी थी। मजदूरी से भी जो पसे लेती वह भी लेखराज अब शराब पीने के लिये ले लेता कभी छीन लेता। यदि चम्पा मना कर देती तो वह उसे मारता।

लेखराज की अवस्था दिन पर दिन बिगड़ती गई। वह शराब में चूर कई कई दिन तक घर नहीं आता था। एक-एक करके चम्पा के सब गहने बिक गए।

चम्पा का सलोना शरीर मुरझाता जा रहा था। मुख की श्री और कान्ति समाप्त हो चुकी थी। वह बच्चों पर बरसती और अपना सारा क्रोध उन्हीं पर निकालती। बच्चे अब उससे डरने लगे थे।

एक दिन लेखराज ने एक बच्चे की सौगंध खाई, वह अब कभी शराब नहीं पीयगा। आरा बिक गया था, तो क्या! वह कुल्हाड़ी से लकड़ी काटगा। चम्पा को लगा जसे वर्षा की हल्की सी फुहार पड़ी हो जसे बादलों से घिरा आकाश निखर आया हो।

उसने जाले से भरी छत को देखा। न जाने इधर वह आलसी क्यों होती जा रही है, उसने अपने घर के जाले क्यों नहीं उतारे ? धुए से सारी छत काली हो रही थी। चम्पा की निराश आंखों में आंसू आ गये फटी मली धोती के छोर से उसने आंखें पोछ लीं। वह भागी भागी मन्दिर के द्वार तक गई, बाहर से ही उसने भगवान् को प्रणाम किया। आशीर्वाद मांगा उसके पति को सुबुद्धि मिले।

दिवाली का केवल पन्द्रह दिन रह गये थे। चम्पा दूगने उत्साह से घर में काम करती। रात्रि को दीपक जला कर सफेद मिट्टी से घर को लीपती। रात को फटे हुए कपड़े सीती मरम्मत करती। पुराने कपड़ों को जोड़ कर तन का ढक देती। चम्पा को मजदूरी अच्छी मिल जाती क्योंकि उसके गांव का शहर से सड़क द्वारा मिलाया जा रहा था।

बड़े ध्यान से चम्पा ने आठ आने चार आने एक रुपया करके दस रुपये जमा किए। वह इस बार बच्चों का अच्छी अच्छी मिठाइयां खिलायगी दूध पिलायगी। चाहे पति ने वादा किया था पर वह उस पर विश्वास नहीं कर सकी। उसने एक मिट्टी के बर्तन में यह दस रुपये के आने-दुअन्नियां सम्भाल कर रख दी। चम्पा को पति पर अविश्वास था। अपने कपड़ों की पोटली में बांध कर रुपये रखती तो वह अवश्य निकाल ले जाएगा। इस बार उसने बच्चों को मिठाई के लिये वादा दे दिया था।

एक न जलेबियों की फरमायश की थी दूसरे ने लड्डुओं की लड़की और छोटे लड़के को बर्फी बहुत पसन्द थी।

मगनराम भी इधर मेहर के चंगुल से निकल कर कुछ मजदूरी करने लगा था। दिन को जितनी मजदूरी करता रात को वह चोरी-चोरी शराब पी डालता। दिवाली से दो दिन पहले मेहर ने मगनराम को तंग करना शुरू किया। वह उसे समझाता रहा—वर्ष भर तो जुआ खेला अब दिवाली पर जब मौका आया है रुपया कमाने का, तो वह तैयार नहीं। मग राम के पासी मन को टिकने का सहारा चाहिये था। उसके

अपने मन का भी कोई स्थल तैयार था कि वह जुआ खेले।

उस दिन सारा दिन लेखराज प्रतीक्षा करता रहा। काम पर भी नहीं गया। चम्पा सड़क पर मजदूरी करने गई तो उसने पीछे से सारा घर छान डाला। बड़े लड़के ने माँ को रुपये सम्भालते देख लिया था। लेखराज ने बड़े दिलासे से कहा— मैं तुम लोगों के लिये कपड़े खरीद लाता हूँ मुझे बतलाओ तुम्हारी माँ रुपये कहाँ रख गई है ?'

बच्चे बहुत बुरी तरह से लेखराज से डरते थे। उसे देख उन पर आतंक छा जाता। वह भयभीत हो उठते। बड़े लड़के को लगा बापू मुझे मार डालेगा। सच बोलने में क्या दोष है। उसने टूटी-सी मिट्टी की हंडिया एक कोने में से निकाली। लेख राज के मन में क्षण भर के लिये दुविधा भी नहीं हुई। वह उठा और रुपयों पर झपटा। उसने एक बार बच्चों की ओर देखा, फिर उसी तरह भागा जैसे गाय रस्सा छुड़ा कर भागती है।

उस रात चम्पा देर से घर लौटी। अपनी उस दिन की कमाई में से आटा पिसवा कर लेती आई। रोज रात को सोने से पहले वह हंडिया में एक बार रुपये गिन लिया करती थी। आज उसने ऐसा नहीं किया। जल्दी जल्दी बच्चों को खाना देकर खाट पर लेट गई। एक बार उसे ख्याल आया लेखराज घर पर नहीं। दूसरे ही क्षण यह ख्याल जाता रहा क्योंकि लेखराज तो कभी घर पर होता नहीं। कल त्योहार है।

चम्पा की आँखों के सामने अपने ब्याह की पहली दिवाली गुजर गई। तब लखराज ने नया जोड़ा ही नहीं बनवा कर दिया था बल्कि नये कंगन भी लेकर दिये थे। चाँदी के सोलह

होने के कंगन जिन्हें बेचकर रुपये उसने लेखराज को दे दिए थे।

दूसरे दिन सुबह उठते ही बच्चों ने चम्पा को घर लिया। "माँ मुझ बर्फी चाहिये माँ मुझे लड्डू चाहियें।"

चम्पा के मन में स्फूर्ति थी चलो अच्छा हुआ उसने कुछ धन तो बचा रख है। आज का दिन तो अच्छा निकल जायगा। जल्दी से हाथ मुंह धोकर चम्पा ने हाँडी टटोली पैसे नहीं थ हाँडी का मुंह खुला पड़ा था। चम्पा क पाँव क नीचे स धरती खिसक गई आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। हृदय में एक हूक सी उठी और तीर सा लगा। चम्पा धरती पर बैठ गई।

'माँ क्या हुआ ?'

चम्पा चुप रही।

'माँ बर्फी चाहिए।"

"रुपए कितने चुराये हैं ?"

बड़े लड़के ने आग मलते हुए कहा— बापू ने चुराए हैं।"

चम्पा की आँखों में खून उतर आया उसने दोनो हाथों से तीनों बच्चों को पीटना शुरू कर दिया। पड़ोसिन न आकर कहा— आज क्यों मार रही हो सुबह सुबह त्योहार का दिन बच्चों को रुलाती। तुम मा हो डायन हो ?

पड़ोसिन अपनी ओर से उपदेश दे कर चली गई। चम्पा ने दर्द भरी दृष्टि से आकाश की ओर देखा। आकाश स्वच्छ था—नीला नीला और स्वच्छ। वायु में जरा सी ठंडक थी। चम्पा ने बच्चों को मारा तो जरूर परन्तु उसका हृदय हाहाकार कर उठा। सचमुच म वह माँ नहीं डायन है। चम्पा का मन भर उठा। उसने चूल्हा भी नहीं जलाया। पड़ोसिन

ने थोड़ीसी रोटी और चाय बच्चों को लाकर दे दी। चम्पा भूखे पेट रही। दिन भर हलवाई मिठाइयां बनाते रहे। पड़ोस में बच्चे, पटाखे छोड़ते रहे, चम्पा के कान में वह बम से भी अधिक छेद करते रहे। उसका हृदय रो देता। वह समझी नहीं क्या कर क्या न कर।

लेखराज घर नहीं आया। वह अवश्य ही कहीं शराब पीकर पड़ा होगा। सब पति अपने घर थ, सब पिता अपने बच्चों को दुलार रहे होंगे। केवल लखराज ही ऐसा पति और पिता है जो घर से दूर है बच्चों से दूर है।

चम्पा के बच्चे दिन भर पड़ौसियों के बच्चों का पटाखा चलाना सुनते रहे। बीच-बीच में मा को आकर तंग कर जाते, चम्पा उन्हें खाने को दौड़ती। उसका इससे बड़ा अपमान क्या हो सकता है। खून पसीने से कमाया हुआ थोड़ासा धन कौड़ी कौड़ी पति ले गया। अपने जिगर के टुकड़ों से छीन कर ले गया।

संध्या होते ही बच्चे घर आ गये।

'मां तू इतने दिन मिठाई का वादा करती रही है। मिठाई कहां गई ?"

'मां बाहर दीप जल रहे हैं।'

'मां तुम उत्तर क्यों नहीं देतीं।"

चम्पा क्या उत्तर देती। काश ! उसे पता होता कि लेखराज ऐसा करेगा। वह पन्द्रह दिन पहले ही मिठाई लाकर घर में रख लेती। यासी ही बच्चों को खिला देती।

पैसा इतना महत्वपूर्ण है! जीवन के हर सवाल का

भगवान पैसा है। पैसे के बिना कुछ नहीं हो सकता। चम्पा की आँखों में अविरल आँसुओं की धारा बहने लगी। मंदिर में आरती हो रही थी। घंटा बजने का स्वर चम्पा के घर तक भी आ रहा था। वह एकाएक उठी भगवान् के घर में आरती हो रही है। मनों चढ़ावा चढ़ा होगा। प्रसाद वह भी ले आवे। प्रसाद पाकर ही बच्चों को झुठला सकेगी।

मन्दिर को विशेष रूप से सजाया गया था। दीपों से जगमगा रहा था। गाँव के सब समर्थ व्यक्ति चढ़ावा चढ़ाने आये थे। चम्पा भी मंदिर की सीढ़ियों के पास हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई। आरती समाप्त हो गई चरणामृत बट गया प्रसाद बंटने लगा। चम्पा दुबक कर कोने में घंटा भर खड़ी रही। पुजारी राधेमल ने देखा भीड़ छट गई है तो वह भी मंदिर के भीतर चले आए।

चम्पा साहस करके आगे बढ़ी दिवाली मुबारिक पण्डित जी जरा सा प्रसाद मुझ गरीब को भी दे दीजिए।”

पण्डित जी की भवें चढ़ गईं। इस भंगिन को इतनी मजाल! जब नवेली थी सुन्दर थी पुजारी राधेमल ने इसे कहा था चार रुपया महीना और रोटी दूंगा मंदिर पर झाड़ लगा जाया कर। तब ऐंठ दिखलाती थी। दस आदमियों के सामने अंगूठा दिखला कर चली गई थी। आज पण्डित जी भी बदला ले सकते हैं। आखिर भंगिन ठहरी।

पुजारी राधेमल ने देखा चम्पा का चम्पक सा रंग काला पड़ गया था। वह कजरारी आँख भीतर धँस गई थी। कपड़े फटे हुए थे। बाल रूखे और बिखरे हुए। पंडित राधेमल का

मन घृणा से भर उठा। सो यह है चम्पा उस शराबी सेगराज की पत्नी।

'तू कहां आ गई है इस समय शुभ मुहूर्त में? लक्ष्मीपूजा समाप्त हुई। तू प्रसाद मांगने कस आई है?"

बड़ा उपकार होगा महाराज। प्रसाद दे दीजिये। मेरे बच्चे भूखा मर रहे हैं।"

'तो यह कोई अनाथालय नहीं। चल, दूर हट, भगवान् के घर में तेरा घमड चूर चूर हो रहा है।'

चम्पा ने बड़ी विनती की परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में वह निराश होकर घर लौट गई। एक दीपक उसकी पड़ोसिन उसके घर के सामने रख गई थी। चम्पा सात हुए बच्चों के पास धरती पर बठ गई। दिवाली की रात को भी बच्च भूख सो गये! ओफ! चम्पा का इतना परिश्रम व्यय गया? जगल से लकड़ी चुनना, खेत में दूसरा की फसल की कटाई करना सड़क पर पत्थर तोड़ कर अपना हाथ खून से रग लेना।

दिन भर चम्पा सुस्ताती रही थी। इस समय मानो उसकी आंखों से कोई नींद छीन कर ले गया था। उसकी आँखें खुली थीं। उसका एक मन हुआ, किसी शराब की दूकान में पड़े सेखराज को कान पकड़ कर खेंच लाये।

धीरे धीरे गांव निद्रा देवी की गोद में सो गया। चम्पा अपने भूत भविष्य पर सोचती रही। उसका मन रह रह कर कहता वह भी मानव है। एक बार गांव में कोई युवक नेता लक्चर देने आये थे, उन्होंने भी कहा था—हर एक व्यक्ति का जीने का अधिकार है। चम्पा को भी। उसके बच्चा को भी।

भगवान् की मूर्ति के आगे इतना चढ़ावा चढ़ा है। सारा पुजारी के घर जायेगा। ओह! यह कैसा अन्याय है। चम्पा इस पाप को समाप्त कर देगी। वह अपने बच्चों के लिये जरूर मिठाई लायगी।

चम्पा की टांगों में न जाने कहां से शक्ति आ गई। वह भागा और मंदिर की सीढ़ियों पर पहुंच उसने सांस लिया। उस समय रात्रि का चौथा पहर था। कोई भी व्यक्ति मंदिर के आसपास न था। चम्पा निधड़क मन्दिर के भीतर चली गई। उसके मन की साध थी दूसरे लोगों की तरह वह भी भगवान् के चरणों में प्रणाम करे। उसने वैसा ही किया फिर जल्दी से एक थाली खाली करके उसमें सब तरह की थोड़ी थोड़ी मिठाई भर ली। फुर्ती से उसके हाथ चलने लगे। दिन भर की भूखी प्यासी थी। फिर भी आज न जाने कैसे शक्ति उसके हाथों में थी।

दो सेब और उठा कर चम्पा ने थाली में रख लिये। फिर थाली उठाकर भागती चम्पा से जल्दी में पानी के एक माट से टकराई। मटका आवाज करता हुआ पक्के फर्श पर गिर पड़ा। पुजारी रामधन न जाने कहां से आ टपका।

"कौन!! तू!! तेरा इतना साहस! शराबी चौधरी की बेटी! मंदिर! हमारे मन्दिर में कैसे आई।"

रामधन ने धक्का दिया। चम्पा के हाथ से थाली छनछनाती दूर गिर पड़ी। एक बार भगवान की मूर्ति ने देखा। चम्पा धक्का न सहार सकी वह भगवान् के चरणों में गिर पड़ी।

भगवान् जाने मानसिक आघात से वह मर गई या अचेत हो गई।

एकाएक भगवान् की मूर्ति में से आग की ज्वाला प्रज्व लित हो उठी। राधेमल स्तब्ध वहां खड़ा था। खड़ा रह गया। वह चम्पा को भी बाहर न ला सका।

छोटा पुजारी जाग आया। धीरे धीरे पौ फटने लगी और मंदिर में भीड़ जमा होने लगी। राधेमल वहां खड़ा था।

गाँव वाले उस पर लांच्छन लगा रहे थे। भगवान् जल रहे थे। चम्पा जल रही थी। मन्दिर जल रहा था। मानव मूक खड़ा था अपनी निष्ठुरता का दंड उसे इससे अधिक क्या मिलता।

मन की आँखें

मन की आँखें

किशोर की माँ ने सपूत को उसी समय कपूत करार दिया था जब वह एक बंगालिन लड़की मालविका को कागजी तौर पर बहू बना कर घर लाया था। माँ की सब आशाओं पर तुषारापात हो गया। विचार थोड़े पड़ गए घर में चहल-पहल होगी स्त्रियाँ सोहाग गायेंगी द्वार पर शहनाई बजेगी और सम्बन्धी न्यौते होंगे किशोर की माँ कामदार गुलाबी साड़ी के ऊपर बनारसी दुपट्टा ओढ़ेंगी। लड़का तो हाथ से निकल गया था उसने माँ के स्वप्नों का विचार न करके कचहरी में ब्याह कर लिया।

अपर माँ की समझ में यह न आया कि लड़का कचहरी में कैसे विवाह कर आया। वह स्वयं भी मैट्रिक तक पढ़ी हैं। उनका विवाह आज से पच्चीस वर्ष पहले हुआ था तब उन की आयु पन्द्रह वर्ष की थी। अपनी आयु की स्त्रियों में वह शिक्षिता हुई भी जाती है भगवान् की कृपा से उनका शरीर

सौष्ठव भी मना है। बातचीत करने में निपुण हैं। अपनी तीनो बेटियों को भी बहु पढा रखी हैं। फिर भी वह यह नहीं समझीं कि बंगालिन मालविका का निर्वाह उनके घर में कैसे होगा?

किशोर के पिता ने इस भूल को जसे गले लगा लिया था। वह बहू को आशीष देते, उसे अपना स्वेटर बनाने के लिये कहते। माँ देखती तो कुढती रहती। उन्हें मालविका में कोई विशेष गुण दिखाई न देता। केवल उसकी बड़ी-बड़ी आँखें वह देखती तो सोचतीं जाने इन आँखों के जादू ने कैसे उनके सपूत को बांध लिया जो स्वच्छन्द पक्षी की तरह खुला फिरता था। मां को बहू की कोई अदा न भाती थी। सलीके से उठना बैठना आंचल सम्हाल कर सिर पर रखना अपनी घनी काली राशी के जूड़े पर ससुर के आने से झट से आंचल से सिर पर ओढ लेना—यह सब उन्हें ढोंग लगते। किशोर को यह क्या अठारहवीं सदी के 'एंटीकट' पसन्द आए, जब कि अपनी बिरादरी में अमीर से अमीर लड़की मौजूद है।

प्रमीला को बहु बना लने की कितने वर्षों से साध थी। प्रमीला बी० ए० तक पढी है। क्या हुआ जो मालविका एम० ए० तक पढी है प्रमीला सितार बजा लेती है। मालविका अपनी भाषा के गाने ऐसे दर्दनाक स्वर में गाती है कि किशोर की मां को अर्थ न समझने हुए भी करुण स्वर से रुलाई छूटती है। भला यह भी गाना हुआ? गाना तो आदमी अपना और सुनने वालों का मन प्रसन्न करने को है। भाड़ में जाए ऐसा गाना! प्रमीला बहू बन कर आती तो साथ में दस हजार का

दहेज लाती । घर की नाक रहती । अब दहेज फूटी कौड़ी भी न पाया था न किसी रिश्तेदार को दो रुपये भी मिलनी में मिले थे । मालविका सास का रुख देखती तो हँस देती । मुस्करा कर काम में लग जाती ।

वीना ननदें भी माँ का आचरण देखतीं तो उसी तरह भाभी से पेश आतीं । केवल मंझली ननद सीता भाभी का ख्याल रखती । और माँ की आँख बचा कर भाभी से हँस बोल लेती । कभी-कभी बाजार भी भाभी के साथ चली जाती । एक ही ऐसा स्थल था जहाँ सास अभागिन बहू के साथ समझौता करती । अपने पास बैठा कर बहू से ताश खेलती । किशोर की माँ घंटों ताश खेल सकती थी । बहू भी ताश खेलना जानती है तरह तरह के खेल उसने सास को सिखाये हैं ।

किशोर पिता के साथ रहने पर भी उनकी दूकान पर नौकरी न कर सका । वह स्थानीय कालेज में अध्यापक है । माँ को बेटे के नौकरी की वजह से कोई शिकायत नहीं । उस दूकान में भी क्या रखा है । एक वह स्वयं हैं दो-दो नौकर हैं । इतने लोग वहाँ दूकान में क्या करेंगे ?

मालविका माँ बनने को हुई तो सास की आँखों में तिरस्कार कुछ कम हो गया । परन्तु थोड़े ही दिन कुछ ही महीने तक । सास ने बहू से पोते की फरमायश कर दी । मानो बच्चे का लड़का या लड़की होना केवल उसी के हाथ में है । घर में जलसा भी मनाया गया । मालविका के लिए दूध अलग लिया जाता । फलों का रस अच्छा बैठना खाना पहनना, सब सास के हिसाब

निरीक्षण में होने लगा। मालविका सब कुछ समझती और मन ही मन मुस्करा देती।

एक दिन वर्षा हो रही थी। मालविका की सास सुबह-सुबह कपड़े धो रही थीं। बेटियां उनकी स्कूल अथवा कालेज जा चुकी थीं। घर में सिवाय एक नौकर के तीसरा कोई न था। सास ने बहू को छत पर जाकर धोती बघारने को कहा। बहू छत पर गई। उतर रही थी तो पांव फिसल गया। लड़खड़ाती हुई गिर पड़ी। गर्भपात हो गया बच्चा जाता रहा।

इसमें भी मालविका का ही दोष निकाला गया। इसे सलीके से काम करना नहीं आता। यदि सलीका जानती होती तो पांव कैसे फिसलता, और गर्भपात कैसे होता?

पौत्र देखने की साध सास के हृदय में ही रह गई। वह मालविका को उसके लिये कभी क्षमा नहीं कर सकी। उठते बैठते उस पर ताने कसतीं। उसकी माँ को भी कोसतीं। मालविका सुनती और चुप रह जाती। किशोर के कालज में गरमी की छुट्टियां थीं। वह कालज नहीं जाता दिन भर अपनी मा का अपनी पत्नी से कटु व्यवहार देखता तो उसका हृदय व्यथित हो उठता। उसने मालविका से कहा भी— चलो हम अलग रहने लगें।

'नहीं, तुम इकलौते बेटे हो माता जी क्या कहेंगी?'

'तभी तो कहता हूं। वह हर समय तुम्हें कुछ न कुछ कहती रहती हैं। हम अलग घर लेकर क्यों न रहने लगें।

मालविका की बड़ी बड़ी आँखें आश्चर्य से भर उठतीं तुम अलग रहोगे तुम्हारे माता-पिता क्या कहेंगे ? तुम तो उनके इकलौते हो !"

किशोर चुप हो जाता। उसकी दोनों बहनें माँ की ओर देख कर भाभी की जी भर कर निन्दा करतीं कोसतीं।

किशोर ने अपनी माँ से यह कह भी दिया कि वह तो बाहर रहना चाहता है परन्तु मालविका ही उसे वैसा करने से रोक रही है।

माँ ने सुना तो हंस कर बोली—"वाह बेटा, मुझे सिखाने आया है। वह कहती होगी तुझे कि चल कहीं बाहर रहने में और तू मानता न होगा।"

किशोर को अपनी माँ की बात पर बहुत अफसोस हुआ। मालविका का क्या दोष है ? कल उसकी कोई बहन ऐसी जगह पर शादी कर ले तो ऐसे घर में वह क्योंकर रह सकेगी ? उसकी सास उससे ऐसा व्यवहार करे, तो ?

शहर में 'माता' का प्रकोप था मालविका की सास को भी 'माता' निकल आई। फैलती गई। भयानक रूप से निकल आई। लड़कियों को अपने रूप की चिन्ता थी। एक नौकरानी मिली परन्तु उसे, किशोर की माँ अपना शरीर छूने न देतीं। मालविका सास की सेवा करती। रात-रात भर जाग कर फफोलों पर दवाई लगाती पास बैठी दवाई पिलाती सान्त्वना देती।

किशोर की माँ कई बार कहती—"बहू तेरा रूप कहीं

नष्ट न हो जाय"। वह सदैव एक ही उत्तर देती— 'माता जी, शरीर का कोई अंग दुःखी हो तो उसे काटकर तो नहीं फेंक दिया जाता, फिर आप चिन्ता न करें, मैंने भी सब के साथ टीका लगवा लिया था।'

"और तो कोई मेरे पास भी नहीं फटकता बहू।'

'किसी को फुर्सत नहीं रहती माता जी, आप अन्यथा न सोचें।'

सास मन ही मन उस घड़ी को पछताती जब उन्होंने मालविका को भला-बुरा कहा था। अब तो कुछ हो न सकता था।

डेढ़ महीने की लम्बी बीमारी से जब किशोर की माँ उठीं तो उनके नेत्र ज्योतिहीन हो चुके थे। अब उन्हें स्नान करवाना खाना खिलाना, सब मालविका करती। घर का प्रबन्ध भी उसी के हाथों में था। भंडार की चाबी उसे थमा दी गई थी। ननदें भी मालविका से दबतीं क्योंकि रुपया पैसा वही निकाल कर देती।

किशोर की माँ अब मोहल्ले में बैठती तो अन्तर् प्रान्तीय विवाहों को ले बैठतीं। उनका कहना था दूसरे प्रान्त की लड़कियाँ बहुत अच्छी होती हैं मालविका देवी का अवतार है उन्हें मौत के मुख से बचा कर लाई है। अब जब आँखें ज्योतिहीन हो गई हैं, तो वह संसार उसके नेत्रों से देखती हैं। यदि मैं पहले चेत जाती तो शायद मुझे इतनी बड़ी सजा न मिलती। मन की आँखें खोलने के लिये शारीरिक नेत्र खो देने पड़े।

कुसुम

कुसुम

कुसुम माँ बनना चाहती थी। आठ वर्ष 'नर्सिंग' का काम करने के बाद जब कुसुम का विवाह हुआ तो उसे लगा था उसके स्वप्न साकार होने का समय समीप है। विधाता को शायद यह स्वीकार न था। कुसुम के पति की मृत्यु हो गई। पाँव फिसल जाने से दिमाग में चोट आ गई थी देखते देखते ही वह समाप्त हो गए थे।

कुसुम के पति भी रोगी की हैसियत से अस्पताल में आए थे। किसी कहानी की नायिका की तरह कुसुम का विवाह उनसे हो गया था। अपनी आठ वर्ष पुरानी नौकरी को वह छोड़ना तो नहीं चाहती थी परन्तु पति नहीं माने थे।

आज पति को मृत्यु का दो मास हो चुके हैं। बीमा कम्पनी से उसे सारी रकम भी मिली है। कुसुम इतने पैसे का क्या करे? उसे केवल सन्तान की चाह है। बचपन से उसे गुड़ियाँ से खेलने का शौक था। उसकी माँ कहती थी इसलिये वह अब

बात करती तो बच्चा की—आज अमुक के घर छः पौंड का लड़का पदा हुआ। दोपहर को जो लड़की पदा हुई थी वह तो एसे लगती थी जसे चाँद धरती पर उतर आया है। जब कुसुम बिल्कुल छोटी थी तो माँ यह बातें पड़ोसिनों से करती थीं। कुसुम बड़ी हुई तो यह बातें उससे भी करने लगीं। कुसुम ने प्रसव वेदना में छटपटाती स्त्रियों को देखा था—बाद में जब फूल सा बच्चा उनके हाथ में पकड़ा दिया जाता तो मातृत्व कसे मुस्करा उठता यह भी उसने देखा था। कुसुम का मन भी उस पवित्र अनुभूति से विभोर होन के लिए मचल उठता। वह अपना मन इधर-उधर की बातों में लगाने का असफल प्रयत्न करती। आकाश की ओर देखती तो उसे ऐसा लगता मानो वह भी उसकी उदासी से द्रवित होकर सहानुभूति जतला रहा है। रात्रि की नीरवता उसे तड़पाती और वह दिन निकलने की प्रतीक्षा करती। उसको अपने मन के भीतर भी सूना सूना सा लगता।

वह स्वयं अनुभव करने लगी थी कि मातृत्व की भावना अब रोग बन गई है। वह माँ बनने के लिए व्याकुल हो उठी। उसके विवाह में हंसी-हंसी में एक सखी न बच्चे के खिलौन एक छोटा सा स्वेटर और नन्हे-नन्हे मोजे बुनकर दिये थे। कुसुम उठते-बठते उन वस्त्रों को देखती और अपनी अवस्था पर रोती। यह उसकी दिनचर्या का एक अंग हो गया था कि वह दिन में दो-तीन बार उन वस्त्रों को अवश्य देख लेती सहलाती और फिर यथास्थान रख देती।

कुसुम सोचती शिमला जसे स्थान में उसका मन नहीं

कलता तो वहीं दूसरे नगर में आकर कैसे समझा ? कुसुम ने धीरे धीरे अपनी पड़ोसिन से मेल मिलाप बढ़ाना शुरू किया। पड़ोसिन आयु में कुसुम के बराबर की थी चौबीस-पच्चीस वर्ष की भारी-भारी शरीर, गोरा हंसता हुआ मुख। वह चार बच्चों की मां थी। कुसुम पड़ोसिन को देखती तो उसे लगता जैसे उसका जीवन पूर्ण है उसे किसी प्रकार का अभाव नहीं।

पड़ोसिन कुसुम को देखती तो आह भरके कहती—"बहन असमय में तुम्हारा सुहाग जरूर लुट गया है। परन्तु भगवान् ने तुम्हें और कोई दुख नहीं दिया। मुझे हाथों दाता ने तुम्हें सब दिया है खाया पिया है फिर मुझ से पूछो तो सब से बड़ी बात है कि जब चाहो अपने पांव पर खड़ी हो जाओ। हमारी तरह ना ता कि पाई पाई का हिसाब पति को बताओ। बार-बार बच्चे जान का बबाल बने रहते हैं।

कुसुम उसे ताकती और हमेशा यही कहती—"बच्चे जान का बबाल नहीं हुआ करते बहन। वह तो सौभाग्य है चाह कर भी मन्द भाग लोग जिससे वंचित रह जाते हैं।

पड़ोसिन बड़बड़ाती अपना घर चली जाती सोचती दो बात है यही इसको तंग करने के लिए, तभी इस तरह की बात बनाया करती है।

पड़ोसिन की लड़की ऊषा की जिसकी आयु ग्यारह वर्ष के लगभग थी इससे लगाव हो गया। उसकी मां को दूसरे बच्चों से इतनी फुरसत ही नहीं मिलती थी कि बेटी की परि-चर्या कर सके। कुसुम बच्चों का शृंगार में पथा पहुंचा उसकी को उसी के पास आ बैठती। ऊषा धीरे-धीरे कुसुम को प्यार

करने लगी। जब तक कुसुम मौसी न आजाती बच्ची के गले से दवाई ही न उतरती। कुसुम को भी काम मिल गया था। लगभग चालीस दिन के निरन्तर परिश्रम से कुसुम ऊषा को ठीक कर पाई। ऊषा बिस्तर से उठ कर चलने फिरने लगी। वह अपनी कुसुम मौसी के घर भी आने जाने लगी।

एक दिन ऊषा कुसुम को एक पत्र दे गई कि उस के पिताजी ने दिया है। कुसुम ने पत्र खोला तो उसमें पचहत्तर रुपये का एक चैक' था। कुसुम के पिता ने लिखा था कि वह बहुत आभारी हैं कि कुसुम ने उनकी बच्ची का जीवन दान दिया है। चैक' देख कर कुसुम के हृदय को बड़ी गहरी चोट पहुंची। ऊषा को वह अपनी बच्ची मानकर उसकी देखभाल करती रही थी। कुसुम को लगा कि वह नर्स रह चुकी है, इस लिये रुपये भेजे हैं। क्या ऊषा भी अपनी मौसी को देखभाल करने के दाम दिए जाते ?

कुसुम ने तय कर लिया वह शिमला शहर छोड़ देगी। यहाँ आकर उसे कोई सुख नहीं मिला। उसने अखबारों में नौकरी के विज्ञापन देखना शुरू कर दिया। एक दिन उसने पढ़ा 'गवर्नेस' की जगह खाली है। वेतन केवल सत्तर रुपये था। कुसुम ने आवेदन पत्र भेज दिया। पांचवें दिन उसे नियुक्ति पत्र और यात्रा का पेशगी खर्च मिल गया। कुसुम ने अपने पड़ोसियों का भी नहीं बतलाया कि वह जा रही है। ऊषा तथा उसके परिवार वालों को बिना मिले उसने शिमला छोड़ दिया। उनका चैक' लौटाना वह न भूली थी।

सब घर में कुसुम का मन रम गया। बच्चों को अपनी माँ सी होकर उन्हें लगा कि वह उनकी माँ है। मुन्ना और चिड़िया को वह देखती तो उसका हृदय वात्सल्य से भर उठता। बच्चों को बड़ी चाह से स्नान करवाती, कपड़े पहनाती और भोजन करवाती। समय पर उन्हें पढ़ाती भी।

एक दिन कुसुम मालकिन की रजाई में टाँके लगा रही थी। मालकिन ने स्वयं बच्चों को खिलाने का प्रयत्न किया। चिड़िया 'कुसुम मौसी' कह कर चिल्लाने लगी। मुन्ना ने मुँह फुला लिया। बहुत शोर करने लगे तो कुसुम रजाई छोड़ कर बच्चों के पास आ गई। उनके पिता ने देखा पल भर में रूठे बच्चे फिर मान गए हैं तो वह हँस कर बोले "अरे यह अभी से अधिक कुसुम मौसी को मानते हैं।"

कुसुम यह सुन कर प्रसन्न हुई। बच्चों की माँ ने यह सुना तो अनजाने ही ईर्ष्या की चिनगारी उनके हृदय में सुलगने लगी।

पहले तो कुसुम से बहुत प्रसन्न थी। अब बात-बात पर टोकतीं। एक दिन लान में वह बच्चों से खेल रही थी कि उनके पिता भी अचानक वहीं आ गए। कुसुम और बच्चों के साथ किसी बात पर हँस पड़े। मालकिन बरामदे से यह देख रही थी। इस सुअवसर का वह कब से [illegible] वह कुसुम को बुरा भला कहने लगीं— तुम आज तो बहुत बढ़ गई हो। आखिर तू क्या है परिचारिका। तूने मेरे बच्चे पराये कर दिए। अब पति हथियाने भी चली है। निकल जा मेरे घर से। माल

किन शायद चप्पल से कुसुम को मारतीं, मगर बिटिया कुसुम से न चिपट जाती।

उसी शाम को कुसुम ने वह घर छोड़ दिया। 'कुसुम आंटी' बिटिया का भोला और तोतला सम्बोधन, उस को बहुत दिनों तक पुलकित करता रहा। दो-चार दिन एक परिचित के घर में बिताकर कुसुम ने अस्पताल में नौकरी कर ली और वहाँ के क्वार्टरों में आकर रहने लगी। काम में संलग्न रहने का बहुत अनुकूल प्रभाव कुसुम के मन पर नहीं पड़ा। वह सड़क पर किसी मां-बच्चे को देखती तो उसका हृदय रो उठता। आंसू जैसे उसकी नाक पर रखे रहते। वह अपनी इस अनचित मनोवस्था से तंग आगई थी। हृदय की पीड़ा को किस तरह समाप्त कर दे वह न समझ पाती थी। रात्रि को सोते समय उसे गोर गोर गोल-गोल चेहरे नजर आते, भोजन सामने रखा रह जाता, वह न खा पाती। अस्पताल के काम से त्यागपत्र देकर कुसुम फिर एक बार अपने घर शिमला लौट गई।

पड़ोसिन को पता चला कुसुम आई है तो वह उससे मिलने गई। पड़ोसिन की गोद में चार-पाँच महीने का शिशु था गोरा लाल लाल अति सुकुमार। कुसुम को देख हंस पड़ा और उसकी गोद में आने के लिए लपकने लगा। कुसुम ने बच्चे का बहुत प्यार किया। पड़ोसिन थोड़ी देर बठी और चली गई।

बच्चे के मुलायम शरीर का स्पर्श अभी भी कुसुम की बाहों में ताजा था। वह बेचैन हो उठी। इधर-उधर घूमने लगी। उसे लगता जैसे उसकी आत्मा शरीर को चीर कर बाहर आ रही है। सन्ध्या हो गई, अन्धकार बढ़ गया, कुसुम

ने अपने कमरे में प्रकाश भी नहीं किया। वह उठ कर छत
पर चली गई। वहां घूमती रही। उस रात उस ने भोजन भी
नहीं किया था। छत के ऊपर बड़ी ठंड थी। शिमला में
दिसम्बर मास की रात कुसुम के शरीर से ज्वाला निकल रही
थी। कुसुम यह समझने में असमर्थ थी कि यह ज्वाला कैसी है।
उस के मन में एक ही भावना काम कर रही थी। वह पड़ो-
सिन का नन्हा बच्चा कैसे वहां से ले आए और भाग जाय।

घड़ी ने ग्यारह बजाये। कुसुम ने अपने पड़ोसियों के घर
के बीच खाली छाई कुछ ऊंची मुंडेर पार की और सीढ़ियां उतर
गई। बाईं ओर कमरे में धीमा सा प्रकाश था। उस ने किवाड़
खोल दिए। दरवाजा खुला ही था। पड़ोसिन बच्चे के साथ
बेखबर सोई थी। कुसुम ने झपट कर बच्चा उठा लिया। परन्तु
वह सीढ़ियां चढ़ना भी जैसे उसे परिश्रम लग रहा था। एक-
एक पग उठाना कठिन था।

छत पर पहुंच कर वह मुंडेर के पास आ कर बैठ गई।
एक कदम भी उस से बढ़ाया नहीं गया। ठंड बढ़ती जा रही थी।
तमाम कोशिश करने पर भी वह हिल नहीं सकी। वहीं की वहीं
बैठी रह गई। शायद जीवन में पहली बार उसने कुछ ऐसा
किया था जो अनुचित था।

उसकी आत्मा ने जैसे उस के शरीर का साथ छोड़ दिया
हो वह निढाल हो गई थी।

शिशु के माता पिता विकल हो कर शिशु को खोजते
खोजते निराश हो गए थे कि तो अकस्मात् ही ऊपर छत

पर दौड़ गई। पहुँचते ही उसके मुख से निकला 'बेबी मिल गया।' परिवार के सब सदस्य ऊपर पहुँचे, पहुँच कर जो देखा वह कितना रोमांचकारी था।

नया प्राणी नये सवेरे से नया स्पन्दन पा सके इसी कामना में मातृत्व भार से दबी मारी कटकटाते शीत में ठिठुर ठिठुर कर जीवन दान देते गतिहीन हो गई थी। संज्ञाशून्य रह गयी थी।

सुलेखा

सुलेखा

सुलेखा को उसकी गली के चौराहे पर कुमार मोटर पर छोड़ गया। सुलेखा ने मोटर से उतरते ही मुँह बिचकाया, जैसे साँझ की पूरी बात का कोई अस्तित्व ही न हो। सुलेखा समझती है कि इस रंगीन शाम का उतना ही महत्व है जितना देखने वाले के लिए कनाटप्लेस के एक शो केस में पड़ी सजी धजी प्रतिमा का होता है। दर्शक कुछ क्षणों के लिए प्रसन्न हो उठता है।

ठंड बढ़ रही थी अभी रात्रि के केवल नौ बजे थे परन्तु फिर भी पूरी गली में निस्तब्धता छाई थी। छोटी सी हलवाई की दुकान के पास एक कुत्ता बराबर भौंकता रहता था आज वह भी चुप था। सुलेखा ने सोचा आज मुझ से तो वह कुत्ता भी अच्छा है जो कम से कम चुप तो है, शायद उसकी आत्मा सुखी है। केवल सुलेखा ही ऐसी है जिसे कभी भी तृप्ति नहीं मिलती जिसकी आत्मा हर क्षण भटकती रहती है।

सुलेखा ने देखा गली की बाईं ओर वाले मकान में जो रहते हैं वह लड़ रहे हैं। वह दो ही काम जानते हैं, जानवरों

की तरह एक खाना दूसरा सोना। नहीं, वह मन ही मन मुस्कराई, इन की पत्नियाँ आपस में लड़ झगड़ भी तो लेती हैं। क्या यह किसी तरह से कम महत्व का काम है? दोंह ओर वाली बड़ी सी इमारत में बहुत से कमरों में बत्तियाँ जल रही थीं। सुलेखा जानती है यहाँ 'सेक्रेटेरियट' में काम करने वाले क्लर्कों को यह ऋणी रहती है या, एक परीक्षा देती है तो तरक्की के लालच से बड़े साहब को खुश करने के भय से, हमेशा परीक्षायें ही दिया करती है। कुछ क्लर्क इसमें केवल मैट्रिक पास होते हैं। वह इधर-उधर की परीक्षायें पास कर के किसी न किसी तरह बी० ए० कर लेते हैं। यह भी जीवन है हर वर्ष एक न एक परीक्षा देते रहना। शायद हम लोग जीवन भर ही परीक्षा देते रहते हैं।

वह आगे बढ़ी, बूढ़ी सेठानी जिसने कई वर्ष वैभव में बिताये थे बीते दिनों की याद में कुछ गा रही थी फटी आवाज बेसुरा गाना। सुलखा साल ठीक तरह से खोढ़ती हुई अपने घर की सीढ़ियाँ चढ़ गयी। इस पुराने मुहल्ले में जिस का एक सिरा दिल्ली की एक आधुनिक सड़क पर मिलता है, सुलखा का घर है। यह घर उसके मामा ने उसे दहेज में दिया था। हाँ सुलेखा का विवाह हुआ था। अब भी उसकी वेश भूषा किसी सधवा से कम नहीं माथ पर नित्य नयी 'डिजाइन की बिन्दी सुरुचिपूर्ण जूड़ा बढ़िया रंगीन रेशमी साड़ी जिसका सरसराता पल्लू जब हवा में इधर-उधर उड़ता, तो हवा सुगन्ध से महक उठती।

सुलखा सोचने लगी आज उसने नौकरानी को छुट्टी दे दी थी। शनिवार रात को वह भी सिनेमा देखने जाती है। शाम

मूल है कर इतनी बड़ी कि बिल्कुल अलग होगई। आज उसका भी सुखी जीवन होता पर होता वह भी अव्यवस्थित ढंग से जीवन व्यतीत करता। अब तो जैसे उस सबकी सम्भावना भी नहीं है।

सुलगा प्रभा को अपने 'फ्लैट' में ले गई। सुलेखा के घर प्रभा कम्पर्टमेंट के सामने से होकर जाना पड़ता था। सुनील कमरे में इधर से उधर चक्कर लगा रहा था। रेडियो उसने इतना ऊंचा लगा रखा था कि तीन मंजिल की बिल्डिंग में और किसी को रेडियो लगाने की आवश्यकता नहीं थी। सुनील ने प्रभा को सुलेखा के साथ जाते देखा नहीं क्योंकि उस समय उसकी पीठ थी शायद दरवाजा उसका अभी भी खुला था।

सुलगा ने प्रभा को कमरे में बैठा दिया और स्वयं चूल्हा जलाने लगी।

प्रभा का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। वह कम्पित स्वर में बोली "जीजी आप का क्या पड़ी है ? किसी के घरेलू मामलों में आप क्यों आती हैं ?"

सुलगा के मन का यह बात छू गई। उस ने चूल्हा जलाना छोड़ दिया। वह प्रभा के पास आ कर बैठ गई। उसने प्रभा से बड़े नम्र स्वर में पूछा कि उसके विवाह पर माता-पिता का कितना खर्च आया होगा।

"लगभग आठ हजार।"

"तुम्हारी पढ़ाई पर ?"

"नहीं जानती जीजी।"

कहां तक पढ़ी हो ?

नहीं रहता था। ऊंचे-ऊंचे उनकी बातचीत करने की आवाज फिर आती, वह सुलेखा सुनती। आज एकाएक यह प्रभा सूटकेस हाथ में उठाए कहाँ जा रही है? धक से सुलेखा के मन में किसी ने जैसे हथौड़े की चोट कर दी हो। ऐसे ही एक दिन आज से सात वर्ष पूर्व सुलेखा भी अपना सब छोड़-छाड़ कर एक चमड़े का सूटकेस लेकर नाना के पास आ गई थी तब की आई वह वापिस नहीं जा सकी। अब उस का जीवन कितना शुष्क और वेजान सा बन रहा है वह हेमन्त को ऐसे ही छोड़ आई थी। जरा सा मनमुटाव हुआ था।

सुलेखा ने विद्युत गति से प्रभा के हाथ का सूटकेस छीन लिया। प्रभा के आँसू जरा सा सहारा पाकर निकल पड़े नहीं दीदी तुम मुझे जाने दो।"

कहाँ जा रही हो?

वाई डब्ल्यू सी ए।'

'वहां क्या है?

'कुछ नहीं।"

तो घर छोड़ कर वहाँ क्या जा रही हो?

जिन का घर है वह घर में रहेंगे मुझे घर से कुछ नहीं लेना-देना।

सुलेखा का अनुमान ठीक ही था। दोनों में शायद झगड़ा हुआ था। यह छोटे छोटे झगड़े विवाह के पहले दिनों में तो ऐसा उग्र रूप ले सकते हैं जैसे तलाक हो जाय तो यहां र । झगड़ों का समाधान कर पाएगा। सुलेखा भी इन्हीं झगड़ों

प्यार जीजी तुम्हारा जीवन नीरस है तो सब का वैसा ही हो तुम्हें किस बात की कमी है ?

सुनन्दा की अनुभवी आँखें प्रभा की अपनी वृत्ति को पढ़ने का यत्न कर रही थीं। जीवन का वास्तविक सुख वह आजकल की सहेलियों मोटरों में घूमने फिरने में ही मानती है। सुनेत्रा ने भी तो ऐसा माना था वह तो इस सब से आगे बढ़ गई थी। उसे बचपन से ही यह शिक्षा मिली थी कि पुरुष की बराबरी करनी चाहिये। वह भी इसी समता की होड़ में पति से लड़ती थी। बहुत देर बाद अब वह समझी है कि जब दो एक व्यक्ति जिनका जन्म दो भिन्न जगहों पर होता है भिन्न वातावरण में जो पलते हैं, बढ़ते हैं वह जब विवाह के सूत्र में बंध कर साथ रहने लगते हैं तो क्या आश्चर्य कि उन में मतभेद होता है। वह एक-दूसरे से लड़ने झगड़ते हैं। सुनन्दा को याद है जीजी सबकी की तरह वह भी गुनगुनी रहती थी। उस समय यदि कोई भी उसे शान्ति और धैर्य की शिक्षा देता था तो उसे वह अपना दुश्मन समझती थी। प्रभा भी आजकल वैसी ही स्थिति में है। कौन समझाये ? जवानी में कोई ही समझता है आप आप अपनी भूलों से सीखता है।

उस रात को प्रभा के प्रति ममता की किसी तरह भगा कर समझा कर सुनेत्रा ने प्रभा को घर भिजवा दिया। सुनन्दा का अपना जीवन बरबाद हो गया है। वह किसी दूसरे के जीवन को बरबाद होने से बचा पाए तो कितना अच्छा हो। क्या प्रयत्न करने पर भी सुनन्दा ऐसा कर पायेगी ? प्रभा उस अपना

"बी० ए० पास हूँ।'

'यानी दस हजार के लगभग क्या ?'

प्रभा हैरानगी से सुलेखा के मुख की ओर देख रही थी कि यह हिसाब किताब किस लिये जोड़ा जा रहा है।'

'सभी की पढ़ाई पर खर्च होता है जीजी मेरी पढ़ाई पर कोई विशेष तो नहीं हुआ ?"

"जानती हूँ परन्तु तुम विशेष बात तो करने जा रही हो ?'

"वह क्या ?'

'पति को छोड़ कर, घर को छोड़ कर जा रही हो।"

"बहुत सी नारियाँ छोड़ देती हैं।" प्रभा के मन में यह था कि वह कह दे तुम ने भी तो छोड़ा है जीजी, मुझे ही क्यों रोकती हो।

एक आदमी यदि गल्ती कर देता है तो इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरा भी करें।'

"कहना बहुत आसान है जीजी, निभाना बहुत मुश्किल। फिर आप कम जान सकती हो बन्धन कितना कष्टप्रद हो सकता है।

'ऐसे स्नेह के बन्धन को हो न पहिचान पाओगी तो पीछे पछताने से कुछ न होगा। तुम अभी अनुमान लगा सकती हो मेरा जीवन कैसा नीरस है ?

प्रभा ने एक क्षण सुलेखा की ओर अविश्वास भरी दृष्टि से देखा सरस जीवन कैसा होगा ? नित्य होटल में खाना खाती है सिनेमा देखती है बाहर घूमती फिरती है कुछ भी तो चिन्ता नहीं इस मकान का किराया इतना आ जाता है कि इसे रुपये पैसे काफी मिल जाते हैं।

दुश्मन मानती है।

सुलक्षा ने ऐसा वह दोनो फिर हसने-बोलने लग गए थ। सुलक्षा उन्हें देख कर प्रसन्न होती। उस जाड़े की वह ठंडी और लम्बी राता का ध्यान आ जाता जब वह अकेली पड़ी रहती है। कोई बात करने वाला भी नहीं होता। कोई पानी पछने वाला भी नहीं होता। सुलेक्षा सोचती, चाहे जब हा प्रभा को भगवान् ने सुबुद्धि दा है। यह क्या कम है।

सुलक्षा का अपना जीवन क्रम वसे का वसे ही चलता रहा, उसमें कोई अन्तर नहीं आया। वह लाख बार अनुभव करती, कि उसने भूल की है परन्तु उसका सुधार अब सात वष बाद कसे हो सकता था। हेमन्त ने कभी उस पत्र तक नहीं लिखा था। सुलक्षा ने केवल यह सुना था कि वह नौकरी छोड़ कर एक संगीत विद्यालय चलाता है। सुलक्षा ने भी तो उसे कभी पत्र नहीं लिखा। अब बीच को खाई लांघने का साहस सुलक्षा में नहीं था। फिर वह कसे भूल सकती है कि वह सुबह छ बज स लेकर रात्रि तक केवल सुलक्षा के चित्र पर, उठने-बैठने पर यहाँ तक कि खाने पीने की टोकाटिप्पणी किया करता था। सुलक्षा का भी सुबह सुबह उठ कर गाना पसन्द नहीं था। प्रभा और सुनील मे भी मतभेद है प्रभा बड़ी खर्चीली है। वह रुपये का कोई मूल्य नहीं समझती सुनील उसक खर्चों से परेशान रहता है। एक ओर परिवार सुलक्षा का किरायदार है वह ये आ गई है फिर भी घर के मालिक की

ऐसी मान्यता है कि वह अब भी अपनी पत्नी को गालियां देता रहता है। पुरुषों की एक यह भी प्रथा है। उनकी पत्नी बस्ता कहानि की तरह उसको बराबर गालियां नहीं देती पाय" समाज व ऐसे बन्धन हैं।

प्रभा अब भी सुसेमा को बाहर जाता देखती तो व्यंग्य के स्वर में यही कहती—"बहुत नीरस है न आप का जीवन जीजी!

सुमता जल्दी में होती वह मुस्करा देती इस आराप का कुछ उत्तर नहीं देती। यह आभास सुसेमा को मिलता रहता कि प्रभा मन ही मन उसके जीवन को स्पर्धा की दृष्टि से देखती है।

धीरे धीरे सुमेरा ने घर में रहना शुरू किया। अब अपने मुहल्ले की उन स्त्रियों को पढ़ाने लगी जिनके लिये काला अक्षर भय बराबर था। सुमता ने देखा कि प्रभा घर में नहीं रहती। सारे दिन उसकी पति स तू तू मैं मैं होती रहती है।

दो तीन मास व्यतीत हो गए थे कि एक दिन सुलता सवह हो मुबह रसाई में गई। उसकी नौकरानी ने बताया कि प्रभा बाबो तो घर में है हो नहीं।

कहां गई ?

बड़ा मान गई। सुनील बाबू रो रहे हैं।"

क्या ?"

सच कह रही हूं बीबी जी सुनील बाबू रो रहे हैं।"

सुसेमा अपने काम में लग गई। यह समय नहीं था कि

वह मुनीश से आकर कुछ कहती। परन्तु सुलेखा को गहरा धक्का लगा, जैसे उस ने अपनी ही गलती फिर दोहराई हो।

प्रभा के जाने के बाद सुनीस ने सुलेखा का घर छोड़ दिया। वह बड़ा ही करुणाजनक दृश्य था जब वह सब सामान लेकर घर से निकला। सुलेखा को वह दिन भी याद था जब वह सामान लेकर घर आया था। प्रभा अपने साथ कुछ भी न ले गई थी। सुनीस ने सब सामान प्रभा के पिता के घर भिजवा दिया जो उन्हीं के यहाँ से आया था।

सुलेखा को उसकी नौकरानी बीच बीच में बतलाती जाती थी कि सुनीस आज इस लड़की को घर में लाया परसों उसको लाया था। घर हट कर मुसाफिरखाना बन गया था वह भी अब सुनीस छोड़कर जा रहा था।

सुनीस को सुलखा का मकान छोड़े कोई छः मास हो गए थे कि एक दिन सुलखा ने अखबार में पढ़ा, हेमन्त और प्रभा का विवाह हो गया है। साथ में चित्र भी था। उसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं थी कि यह कोई और हेमन्त और कोई और प्रभा है। सुलखा ने चित्र देखा और एक लम्बी निश्वास छोड़ी। स्पर्धा या ईर्ष्यावश नहीं बरबस यही सोचकर कि क्या यह भविष्य में निभा पायगा? प्रभा का उद्दंड स्वभाव और हेमन्त की हर समय छिद्रान्वेषण करने की आदत, दोनों में कहाँ सामञ्जस्य है?

मूर्तियां

मूर्तियाँ

कमला देख रही है नौकर लम्बे बाँस के साथ बँधे ब्रुश द्वारा जाला साफ कर रहा है। वह मेज पर रखकर बंगाली महाश्वेता का नवीन उपन्यास पढ़ने का प्रयत्न कर रही है। पुस्तक का शीर्षक है 'टू मैनी हस्बंड्स'—नाना प्रकार की सूझ-वह पन्ने उलटती जा रही है। पुस्तक में उसका मन नहीं लगता। आँखें ऊपर उठायीं तो देखा एक मकड़ा जाले में से गोलाई में निकल कर दीवाल पर चलने लगा। नीचे कमला की मेज गिरी है पर उस से उतरता नहीं दीवाल पर बैठने का साहस नहीं कमजोर है वह। यदि जाले के साथ ही लिपट कर चला जाता तो उसका अस्तित्व भी वहीं समाप्त हो जाता। उसने बचने का प्रयत्न किया, पर भटक रहा है।

कमला का मन मकड़े के लिए सहानुभूति से भर उठा। काश ! वह उसके लिए ऐसा ही ताना-बाना बना सकती। तभी उसने देखा कि वह बहुत दूर तक गया और फिर लौटकर वहीं आया जहाँ से उसने आरम्भ किया था।

कला भी लौट आई थी वहाँ जहाँ से उसने जीवन आरम्भ किया था।

पिता को माँ से हर क्षण लड़ते देख, पैसे पैसे के लिए तंग करते देख, उसने मन में प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह कभी भी विवाह न करेगी। पुरुष संसार से वह बदला लेगी। इक्कीस वर्ष की अवस्था में एम० ए० पास कर उसने एक मामूली कालेज में पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। कैसी-कैसी मनोखी उमगें थीं उसके मन में। उसे लग रहा था 'फ्लोरेन्स नाईटिंगेल' की भाँति वह भी पुरुष समाज को ललकार रही है। उसके अपने समाज में अभी तक कोई लड़की अठारह वर्ष से अधिक कुँवारी नहीं रही। ठीक इस मकड़े की भाँति वह भी जाल से निकल आयी थी अपना अलग अस्तित्व बनाने, संसार की चलती प्रथा से भिन्न होकर। कुछ देर सफलता भी मिली है उसे।

आकांक्षा पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी जिस समय दो ही वर्ष की नौकरी के उपरान्त उसे विद्यालय की प्रिन्सिपल बना दिया गया। वह विदूषी है संसार यही कहता है। उसकी प्रतिभा की धूम है। उसके सद्व्यवहार और कार्यकुशलता की प्रशंसा होती है। वह यही तो चाहती थी। फिर अब एक वर्ष से उसकी परेशानी क्या बढ़ने लगी है? पहले इतिहास में एम० ए० किया फिर मनोविज्ञान में किया और अन्त में राज नीति में भी। अब एक वर्ष से कुछ नहीं किया। केवल कभी कभी मन उकता जाने पर मिट्टी की मूर्तियाँ बनाया करती है। उसे अपना बाल्यकाल याद है। शायद तब तो कभी नहीं बनाती थी ऐसी मूर्तियाँ, न जाने अब यह नया स्वभाव क्यों

पढ़ गया है। उसने मूर्तियां बनाना किसी से सीखा नहीं केवल अभ्यास से ही आ गया है। ध्यान से मूर्तियां गढ़ती है तो कभी-कभी सुन्दर बन जाती हैं उन पर रंग भी करती है, फिर उन मूर्तियों का बांट देती है इधर-उधर माली के बच्चों को भिखारी बच्चों को।

उसको कालेज से ही एक छोटा सा बंगला मिला है जहाँ उसने एक छोटासा बगीचा भी लगा रखा है। कालेज का माली उसे पानी देता है फिर भी कला फूल पत्तियों को अपने हाथ से सहलाती है। होस्टल की छात्राएं, कभी कभी उससे पूछने आ जाती हैं। पिछवाड़ बाले बराण्डे में अभी तक किसी को आने का साहस नहीं हुआ।

कला देखने में साधारण है, परन्तु मुंह पर सौष्ठव है रह रह कर ऐसा झलक आता है मानों दूध में उफान आया कि आया। पुस्तकों के साथ इतना कड़ा परिश्रम करने पर भी उमर गुन की आभा नहीं बिगड़ी। सिर के बाल एक दो कुछ सफेद हो गए हैं।

आज रविवार है। कालेज बन्द है। पुस्तक में मन न लगने पर कला में फिर मिट्टी ली और मूर्तियां बनाने लगी। आज भी वह पिछवाड़े के बराण्डे में ही थी।

क्या कर रही हो कुमारी जी ?" डा० धीर ने मुस्कराते हुए पूछा।

धीर की आयु अट्ठाइस-उन्तीस वर्ष की है। रंग खूब गोरा है ऐसे चमकता जैसे गंगा की बालूरेती में रेत का ढेर। धीर भी कालेज का डाक्टर कुछ समय पहले ही नियुक्त होकर आया था।

'यहां कुछ मूर्तियां बनाने का प्रयत्न कर रही हूं।' कला कुछ झेंप रही थी।

"ओह मिट्टी की मूर्तियां!' धीर की वाणी में व्यंग्य था।

'डा० साहब यह तो कला है कला।'

कहकहा लगा दिया धीर ने—"कला, नारी की कला तो केवल उसकी अपारशक्ति का एक अंश है देवी जी, आप मिट्टी की मूर्तियां छोड़ सृष्टि की चलती फिरती मूर्तियों का निर्माण कर सकती हैं।'

कला लजा गई। इतनी पढ़ी-लिखी होने पर भी उसको लज्जा ने पीछा नहीं छोड़ा था। डा० धीर को यह कुछ बुरा नहीं लगा, यह सब बड़े सहज स्वर से कह गया था। कला को लजाते देख उसे आभास हुआ कि वह कुछ अनुचित कह गया है।

× × ×

कला को उठते बैठते यही ख्याल आता—'देवी जी आप तो सृष्टि की जीती जागती मूर्तियों का निर्माण कर सकती हैं।'' दूसरे दिन कालिज पढ़ाने गई तो मन में रह रह कर विचार उठता क्या यह भोली भाली लड़कियां, हंसते हुए निर्दोष चेहरे इन का भी किसी नारी ने निर्माण किया होगा। नहीं नहीं भगवान् ने मानव कौन है निर्माण करने वाला। परन्तु भगवान् मानव को सहायता अवश्य देता है। नारी शायद बनी इस लिए है। ठीक तो है यदि यह न होता तो संसार कब से समाप्त हो जाता।

कला धीरे धीरे अपने आप से बातें करती, साथ-साथ विद्यालय का काम भी करती जाती। मिट्टी की मूर्ति तो वह

अपने हाथ से बनाती है। परन्तु सजीव मूर्ति के लिए तो उसे सहायता लेनी पड़ेगी पुरुष की। उहू—क्या सोच बात है? पुरुष—जिस से उसे घृणा है—बहुत ही हार्दिक घृणा है।

संध्या समय जब वह घर आई तो डाक्टर धीर का एक छोटा सा पत्र था।

देवी जी

मैं कल वाली बात के लिए बहुत दुखी हूं अनजान में हा ऐसी धृष्टता हो गई। आशा है आप क्षमा कर देंगी मेरा वह सब कहने का तात्पर्य कभी भी असभ्य न था।

एक बार फिर क्षमाप्रार्थी

— —धीर

धीर का नौकर खड़ा था उसे आज्ञा थी कि उत्तर लेकर आना। कमला को लिखना पड़ा।

डाक्टर साहब!

क्षमा करने की उसमें बात ही क्या है? आप ने तो एक साधारण सत्य को ही मुझ पर प्रकट किया है जिसे शायद मैं भूल रही थी। आप को कष्ट हुआ क्षमा चाहती हूं।

× × ×

कमला के मन में द्वन्द्व चलता ही रहा। सजीव मूर्तियां! मिट्टी की मूर्तियां! सजीव मूर्तियों के लिए उसे जीवन की इच्छाओं का बलिदान करना पड़ेगा।

एक पुरुष की इच्छाओं का दास बनना पड़ेगा, साधना करनी पड़ेगी एक घर बसाना पड़ेगा।

"यहाँ कुछ मूर्तियाँ बनाने का प्रयत्न कर रही हूँ।' कला कुछ झेंप रही थी।

"ओह मिट्टी की मूर्तियाँ!' धीर की वाणी में व्यंग्य था।

'डा० साहब यह तो कला है कला।"

कहकहा लगा दिया धीर ने—'कला, नारी की कला तो केवल उसकी अपारशक्ति का एक अंश है देवी जी, आप मिट्टी की मूर्तियाँ छोड़ सृष्टि की चलती फिरती मूर्तियों का निर्माण कर सकती हैं।'

कला लजा गई। इतनी पढ़ी लिखी होने पर भी उसका लज्जा ने पीछा नहीं छोड़ा था। डा० धीर को यह कुछ बुरा नहीं लगा, वह सब बड़े सहज स्वर से कह गया था। कला को लजाते देख उसे आभास हुआ कि वह कुछ अनुचित कह गया है।

× × ×

कला को उठते बैठते यही ख्याल आता— देवी जी आप तो सृष्टि की जीती जागती मूर्तियों का निर्माण कर सकती हैं।" दूसरे दिन कालज पढ़ाने गई, तो मन में रह रह कर विचार उठता क्या यह भाली भाली लड़कियाँ हंसते हुए निर्दोष चेहरे इन का भी किसी नारी ने निर्माण किया होगा। नहीं नहीं भगवान् ने, मानव कौन है निर्माण करने वाला। परन्तु भगवान् मानव को सहायता अवश्य देता है। नारी शायद बनी इस लिए है। ठीक तो है यदि यह न होता तो संसार कब से समाप्त हो जाता।

कला धीरे धीरे अपने आप से बातें करती, साथ-साथ विद्यालय का काम भी करती जाती। मिट्टी की मूर्ति तो वह

मनचली

उसने अपने मन को टटोला, क्या वह इन सब बातों से जिन के लिए अब तक दूर रहती आ रही है छुटकारा पा सकती है ? शायद नहीं ?

मिट्टी की मूर्तियों का क्या ? बनाई और टूट गई, या तोड़ दी। यह भी समाज को देश को कोई देन है ? नहीं यह तो कर्मभूमि से भाग जाना है।

तर्क चलता रहा

कला सोचती रही

जी हाँ! प्रेम जीवन के सार तत्त्व का पोषण खास किया था इन शब्दों से।

स्पष्ट बात करने से घबराती न थी सविता निर्भय थी।

बसन्त उस समय कोई नवयुवक छोकरा नहीं था कि सविता की सब बातें अच्छी समझती। यौवन के बत्तीस बसन्त देख चुका था। दो नन्हें मुन्ने बच्चों का पिता था।

अक्तूबर में कालेज के खुलते ही नौ अगस्त के दिन नेताओं के पकड़े जाने के कारण विद्यार्थियों ने एक जलूस निकाला। सविता सब से आगे थी उसके हाथ में झंडा था। वह गिरफ्तार कर ली गई। कालेज के कितने ही छात्र उसके साथ पकड़े गए, कुछ सहानुभूति दर्शित करते आगे आ गए।

तभी प्रिन्सिपल जो शायद अब भी स दम्भ स कहने लगे "कैसी लड़की है कालेज का नाम डुबो दिया। मैं तो लड़कियों को कालेज में लेने के पक्ष में न था।"

बसन्त ने सुना बाहर आवाज आ रही थी "सविता जिन्दाबाद महात्मा गांधी की जय, नेताओं को छोड़ दो। सविता जिन्दाबाद।" तभी प्रोफेसर मिश्रा जो सविता को इतिहास पढ़ाते थे बोले—"सविता भी बड़ी भावुक है गांधी पढ़ने में उसकी पहुंच हो पाई अब रही थी जब उसने सुनहरा मौका देख दो दिन जेल में काटने की भी सोच ली।"

बसन्त ने इसका कोई उत्तर न दिया था। जैसे कुछ

केवल दो मास पढ़ाया है परन्तु फिर भी वह एक अमिट रेखा उसके मानस पट पर छोड़ गई है। बार-बार उस के जीवन में आकर दूर निकट का सम्बन्ध जोड़ लेती है।

क्या वह प्रारम्भ से मनचली थी? जब बलवन्त ने उसे पहली बार देखा है तब वह सत्रह वर्षीया 'आई ए' के दूसरे वर्ष में पढ़ने वाली छात्रा थी।

खादी की श्वेत धोती धानी ब्लाउज पहने बड़े अन्दाज से उस ने कहा था, "नमस्ते प्रोफेसर साहब अब आप हमें फिलासफी पढ़ाया करेंगे?"

बलवन्त मुस्करा दिया था। कितनी फूहड़ है यह लड़की जब कि प्रिंसिपल महोदय स्वयं उस का परिचय देकर गये हैं, यह फिलासफी के नये प्रोफेसर हैं। फिर यह बढ़गा प्रश्न क्यों?

बलवन्त को कुछ ही दिनों में सविता की प्रतिभा का परिचय मिल गया। वह एक छोटे से 'टस्ट' में प्रथम रही थी। बलवन्त ने कहा था "सविता तुमने प्रश्न का हल बहुत अच्छा किया है क्या बहुत मेहनत करती हो?"

'जी हां,' छोटा सा स्पष्ट उत्तर था। श्रेणी के सब विद्यार्थी खिल खिला उठे। बलवन्त स्वयं भी मुस्कराये बिना न रह सका।

छोटा सा सरस उत्तर—मानो कांच के गिलास में वर्षा की बूंद गिरी हो। 'जी हां' की अनोखी झंकार बलवन्त के कानों में गूंजती रही कभी कभी अध्ययन में खलल डालती रही।

जी हां! जैसे जीवन के चार सत्य का पोल खोल दिया था इन शब्दों से।

स्पष्ट बात करने से घबराती न थी सविता निर्भय थी।

बसवन्त उस समय कोई नवयुवक छोकरा नहीं था कि सविता की सब बातें अच्छी समझती। जीवन के बत्तीस वसन्त देख चुका था। दो नन्हें मुन्ने बच्चों का पिता था।

अक्तूबर में कालेज के खुलते ही नौ अगस्त के दिन नेताओं के पकड़े जाने के कारण विद्यार्थियों ने एक जलूस निकाला। सविता सब से आगे थी उसके हाथ में झंडा था। वह गिरफ्तार कर ली गई। कालेज के कितने ही छात्र उसके साथ पकड़े गए, कुछ सहानुभूति दर्शित करते काबू आ गए।

तभी प्रिन्सिपल जो शायद अंग्रेजों से दब्बू थे कहने लगे "कैसी लड़की है कालेज का नाम डबो दिया। मैं तो लड़कियों को कालेज में लेने के पक्ष में न था।

बसवन्त ने सुना बाहर आवाज आ रही थी "सविता जिन्दाबाद महात्मा गांधी की जय, नेताओं को छोड़ दो। सविता जिन्दाबाद।" तभी प्रोफेसर मिश्रा जो सविता को इतिहास पढ़ाते थे बोले—'सविता भी बड़ी चालाक है खादी पहनने से उसकी पहले ही धाक जम रही थी अब उसने सुनहरा मौका देख दो दिन जेल में काटने की भी सोच ली।

बसवन्त ने इसका कोई उत्तर न दिया था। उसे कुछ

केवल दो मास पढ़ाया है परन्तु फिर भी वह एक अमिट रेखा उसके मानस पट पर छोड़ गई है। बार-बार उस के जीवन में आकर दूर निकट का सम्बन्ध जोड़ लेती है।

क्या वह आरम्भ से मनचली थी? जब बलवन्त ने उसे पहली बार देखा है तब वह सत्रह वर्षीया 'आई ए' के दूसरे वर्ष में पढ़ने वाली छात्रा थी।

खादी की श्वेत धोती धानी ब्लाउज पहने बड़े अन्दाज से उस ने कहा था, "नमस्ते प्रोफेसर साहब अब आप हमें फिलासफी पढ़ाया करेंगे?"

बलवन्त मुस्करा दिया था। कितनी फूहड़ है यह लड़की, जब कि प्रिन्सिपल महोदय स्वयं उस का परिचय देकर गये हैं, यह फिलासफी के नये प्रोफेसर हैं। फिर यह बढंगा प्रश्न क्यों?

बलवन्त को कुछ ही दिनों में सविता की प्रतिभा का परिचय मिल गया। वह एक छोटे से 'टस्ट' में प्रथम रही थी। बलवन्त ने कहा था 'सविता तुमने प्रश्न का हल बहुत अच्छा किया है क्या बहुत मेहनत करती हो?'

जी हां," छोटा सा स्पष्ट उत्तर था। श्रेणी के सब विद्यार्थी खिल खिला उठे। बलवन्त स्वयं भी मुस्कराये बिना न रह सका।

छोटा सा सरस उत्तर—मानो कांच के गिलास में वर्षा की बूंद गिरी हो। 'जी हां' की अनोखी झंकार बलवन्त के कानों में गूंजती रही, कभी कभी अध्ययन में खलल डालती रही।

उसकी चर्चा चल जाती तो मिस्टर दास ग्रन्थ जी के अध्यापक सदैव कहते— 'लड़की ने भावना में बहकर अपने विद्यार्थी यौवन का सत्यानाश कर लिया।" बसन्त सोचता ठीक कह रहे हैं दास साहब।

प्रायः एक वर्ष उपरान्त बसन्त को उसके ब्याह का निमन्त्रण-पत्र मिला था। बसन्त प्रोफेसर था। अपनी जब की दशा से विवश था सविता के विवाह में सम्मिलित न हो सका।

एक दिन साइकल पंक्चर हो जाने पर बसन्त उसे घसीटते हुए घर जा रहा था कि रास्ते में एक बड़ी-सी शानदार मोटर रुक गई।

बसन्त का तीन मिनट लग गए पहिचानते कि मोटर से उतरने वाली नारी सुन्दर साड़ी में लिपटी आभूषणों से लदी नव-विवाहिता और कोई नहीं उसकी छात्रा सविता ही है।

"तुम ! सविता !"

'जी हां प्रोफेसर साहब।" साथ में एक अधेड़ व्यक्ति थे चालीस के उस पार होंगे।

"यह तुम्हारे पति हैं

'जी हां" वह छोटा सा उत्तर था, स्वभावानुसार।

"अच्छी तो हो ?

जी हां।"

बस पति के बुलाने पर वह चली गई। न मिलने की बात न कुछ और। बसन्त के मन में तूफान सा उठ गया था यह

झटपटा लगा भौर एक दिन धर्मपत्नी को साथ लेकर सविता को जल में मिलने गया।

'सविता तुम एक होनहार छात्रा हो, पढ़न में तेज हो, तुम्हें चाहिए कि क्षमा मांग लो भौर भपनी पढ़ाई फिर से भारम्भ कर दो, परीक्षा भाने वाली है।

सविता ने लम्बी गदन उठा कर बलवन्त की भोर देखा परन्तु वह उसके भाव न पढ़ सका। भौर तभी उसने कहा।

"जी हाँ'

'जी हाँ , छोटा सा उत्तर--जिसन एक बार सत्य का पोल खोला था शायद इस बार सविता के जीवन का सत्य छुपा दिया।

उसके दूसरे दिन ही सविता के पिता न कालज में भाकर प्रोफसरों से कहा था कृपया भाप लोग ही उसे समझाए मेरा भपनी मां का बहिनों का कहा वह नहीं मानती।

बलवन्त को कुछ भाश्चर्य हुभा। सविता कद में ही रही। क्षमा नहीं मांगी। बलवन्त को लगा मान उसकी पराजय हो गई थी। एक छोटी सी बालिका ने उस हरा दिया। कोई डेढ़ वप बाद एक दिन उड़ती उड़ती खबर सुनी बल्वन्त ने, सविता का स्वास्थ्य खराब है भस स उसे रिहा किया जा रहा है।

वह कालज नहीं भाई बलवन्त ने भी उस मिलने का प्रयत्न नहीं किया। जीवन-व्यस्त था। छोट स परिचय का छोटा-सा मोल था। कभी कभी कालज के "स्टाफ-रूम' में

वह उसी की ओर आने लगी—बसन्त खड़ा हो गया, न जाने कौन आ रही है ?

उस नारी ने आगे बढ़कर कहा—

"नमस्ते ऑफिसर साहब ।"

स्वर चिर-परिचित था । बसन्त को कानों पर विश्वास न हुआ । ध्यान से देखने पर पहिचान गया । उसकी छाया थी सविता शरीर आधे से हुआ था और सिपस्टिक से रंग से आस रूप थे ।

"तुम—यहाँ—आप सविता !"

वह खिलखिला दी । इस बार छोटा-सा—"जी हाँ" नहीं था ।

"ऑफिसर साहब आखिर आपने पहिचान ही लिया ?"

"हाँ पर इतनी दुबली कैसे हो गई हो ?"

"मोहन हलवा खाकर, मोटरों पर घूम कर ।"

बसन्त हैरान था यह कैसा उत्तर है ।

ऐसे उत्तर देता है शायद सभी लोग इस नगरी में करते हैं ।

"कहिये आपके पति कैसे हैं ?"

"यह आप क्यों कह रहे हैं मुझ, मैं तो यहीं आपकी छाया हूँ सविता । हां मेरे पति को भगवान् के घर से बुलावा आ गया था इन्द्र पति बन्द हो जाने पर वह चले गए ।"

बड़े सहज ढंग से उसने यह बात कही थी । बसन्त देखता रह गया ।

"आजकल फिर क्या करती है ?"

लड़की क्या है ? दो वर्ष के लगभग कैद काटी इसने, बीमारी सही देश के लिए, खादी पहिनती थी, कालेज में पर्दा लग की अध्यक्षा थी। आज साड़ी सोने की झीनी तारों स चमकती हुई जगमगाते आभूषण, शानदार 'ब्यूक' मोटर। यह सब क्या है ? क्योंकर है ? क्या इसकी परिस्थितियां ऐसी थीं? माता पिता ने जबरदस्ती कर दी है ? जिस बात में इसकी इच्छा न हो, तो यह किसी का रोब मानने वाली नहीं। कैद थी माता पिता की बात न सुनी। अब तो बड़ी है, स्वतन्त्र है। उसमें पैसे के लिए ? और इतने में बलवन्त घर पहुंच गया तो चाय पीने में और बच्चों में मस्त हो गया।

बलवन्त चहलकदमी कर रहा था कि इतने में पत्नी आ गई।

'चलो सोने।'

नहीं, तुम जाओ मैं अभी न आ सकूं गा।'

मन ही मन उसने पक्का कर लिया कि आज सविता का विश्लेषण करके ही सोएगा।

"मनचली है यह सब लोग कहते हैं।

उस मुलाकात के उपरान्त कितनी घटनाएं घटीं, पंजाब में विभाजन हुआ यूनिवर्सिटी लाहौर से चलन गई दहली में कालेज खुला बलवन्त को भी पंजाबी आफसर होने के नाते यहां जगह मिली। जीवन के इस भयानक तूफान में वह सविता को भूल सा गया था। एक दिन वह लड़कों के कहने पर यमुना तट पर 'पिकनिक' में सम्मिलित होने गया। उनके हंसी-मजाक से ऊबकर वह घूमने लगा। कुछ दूर जाने पर उसने एक नारी देखी

है? यदि है भी तो क्या हो गया। सविता भी तो नारी है, एक अधेड़ व्यक्ति से ब्याह हुआ उसका क्या हो गया यदि उसके मृत्यु पश्चात् वह ऐसे हो गई वह सविता—खादी की केसरी साड़ी में लिपटी तिरंगे को उठाये, आप पकड़ी गई थी सविता जिन्दाबाद" सविता की जय "महात्मा गांधी की जय नेताओं का दौर था। बसन्त के कानों में स्वर गूंजने लगा। वही तो सविता ने गैर जात कर विवाह किया समाज की मानती सविता अभी अब कलंकिनी सविता है।

आज सन्ध्या को ही सविता के पिता आए थे अपनी छोटी लड़की के लिए एक लड़के के चरित्र के विषय में पूछ रहे थे।

बसन्त उन्हें न पहचान सका था परन्तु वह कहने लगे— "आप तो सविता को भी पढ़ाते थे न" और तब उनका चेहरा क्रोध से तमतमा गया गाली घृणा से मुंह की नसें फूल गईं। सविता का नाम सुन कर ही बसन्त के कान खड़े हो गए।

क्या उस जाने वाला सविता आपकी लड़की थी।

हाँ वह—उस जाने वाली सविता पति के नाम को धब्बा लगाने वाली मदिरा पान करने वाली बात बात पर भड़काने वाला यूं ही पैसा बरबाद करने वाली भगाई हुई लड़कियों को अपने घर में रखने वाली अपनी बहनों के रास्ते का कांटा—वही लड़की है। भगवान् ने न जाने मुझे किस पाप का दण्ड दिया है।

बसन्त निस्पन्द था निरुत्तर था। क्या कहे? जीवन को

"क्या करती हूँ ? यह प्रश्न तो बड़ा टेढ़ा है। नदी देख रहे हैं न, कैसे बह रही है। बस, ऐसी ही धीमी गति से, मैं भी बह रही हूँ।"

बलवन्त और कुछ न पूछ सका सदैव ही ऐसा होता रहा है। जब-जब बोलती रही है बलवन्त उसकी वाचालता के आगे चुप ही रहता है।

"प्रोफेसर साहब, आप तो यहीं हैं फिर कभी मिलूँगी।"

बलवन्त कुछ कहे कि हाथ जोड़कर वह चल चुकी थी और तभी उसके एक सहयोगी ने कंधे पर हाथ रख कर कहा "यार तुम भी इस मनचली को जानते हो ? मेरा परिचय करवा दिया होता।"

"देखो तुम उस भद्र नारी को मनचली कहते हो।तुम्हारे जैसे सभ्य व्यक्ति यदि ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं तो '

गरम क्यों हो रहे हो बलवन्त, यह सभ्यता शायद तुम्हारी होगी तुम भी तो यार फिलासफर हो न तुम्हारी निगाहों में मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता पूर्ण रूप से मिलनी चाहिए। शायद तुम तो समाज के प्रतिबन्ध नहीं मानते और शायद यह भी नहीं मानते किसी नारी का यदि पति मर जाए, वह युवती हो अमीर हो तो घर की चारदीवारी में बन्द रहे। मेरे दोस्त यह तुम्हारी भद्र महिला स्वछन्द पछी है डाल डाल पर '"

बलवन्त इससे अधिक न सुन सका था। अब भी उसके माथे पर पसीने की बूंद चमकने लगीं। क्या यह सब सच

पत्थर और सगीत

बिताने का अपना-अपना ढंग है। न जाने उसके मन में कौन सी भावनाएं काम कर रही होंगी।

बलवन्त केवल इतना ही कह पाया–'भगाई हुई स्त्रियों का अपने यहां आश्रय देना तो कोई बुरी बात नहीं है महोदय, इस से तो वह भला कर रही है।"

"बस बस प्रोफेसर साहब यह कलंकिनी है पति के पैसे पर सांप है। बहनो की कोई सहायता नहीं करती।'

बलवन्त ने तब कोई उत्तर नहीं दिया था और न ही कुछ पूछा था। सविता के पिता चले गए थे। वह सोचता रह गया था। मनोविज्ञान के बहुत से नियम उस पर लागू करता रहा परन्तु कोई नियम उस पर अनुकूल न बैठता था। बलवन्त को लगा जैसे सब ग्रन्थियां एक साथ साकार हो उठी हैं। सविता का व्यवहार मनचली के अनुकूल ही है।

घड़ी ने बारह बजा दिए। बलवन्त कोई समाधान नहीं ढूंढ पाया। वह उठा और दर्पण में अपना मुख देखने लगा। वह देखने में बुरा नहीं। क्यों न वह कलंकिनी सविता से परिचय बढ़ा ले एक बार जाकर देख ले वह क्या है? क्यों ऐसी हो गई है? पिता नाराज है शायद यह रुपया उन्हें नहीं देती। वह तो उसका रुपया चाहते हैं। इतने बड़े घर ब्याही गई है। शायद केवल इसलिए कि यह समय-कुसमय पर इनकी सहायता करती रहे। बलवन्त ने अन्त में निश्चय कर लिया कि वह पता लगायेगा—यह सविता को और भी निकट से देखेगा। और इसी निश्चय को लेकर वह सोने चला गया।

पत्थर और संगीत

पत्थर और संगीत

निशा को बचपन से पढ़ने की लगन है। माता-पिता का केवल नाम ही सुना है उसने देखा कभी नहीं। दूर के अमीर ताऊ ने उसका पालनपोषण किया है। पढ़ने की प्रवृत्ति देख कर उसे पढ़ाया है। मैट्रिक तक पढ़ाने की इच्छा थी पर निशा को मैट्रिक में पढ़ने का रोग लगा कि जीवन भर लगा रहा। रायसाहब का अपना लड़का विलायत गया फिर लौटा नहीं। लड़की ब्याही थी। उन्होंने नाती को गोद लिया था उसके लिए उन्होंने आशा रखी थी। परन्तु अपने घर का आदमी पास होने से और ही बात हो जाती है। निशा का बाला मुख उनका दया का पात्र बना। अनाथ बालिका के भाग्य जागे।

रायसाहब उसके पढ़ने से प्रसन्न होते। अपने किसी बच्चे ने उन्हें इतना गौरव न दिया था जितना यह बालिका दे रही थी। उसने बी० ए० प्रथम श्रेणी में पास किया। डाक्टर राजेन्द्र ने जिन्होंने मनोविज्ञान में पी० एच० डी० की थी और अब और रिसर्च करने जा रहे थे निशा को अपना सहकारी

चुन लिया । राकेश ने निशा को चार वर्ष तक पढ़ाया भी था ।

निशा प्रातः नौ बजे से लेकर ग्यारह बजे तक डाक्टर राकेश के पास काम करने आती सन्ध्या को सात बजे तक नोट्स बना कर घर दे जाती सवेरे उन पर विवेचन होता । रायसाहब ने जब यह सुना तो उन्हें अच्छा नहीं। उनके रूढ़िवादी मन को ज़रा सी ठेस लगी ।

वह बोले, "दो सौ रुपये के लिए यह काम करती हो तो छोड़ दो परन्तु मैं तुम्हारी भावनाएं कुचलना नहीं चाहता । तुम सोचती हो कि यह तुम्हारे लाभ के लिए है तो करती जाओ अवश्य करो ।'

ताऊ जी आपकी बात तो ठीक है। डाक्टर साहब हमारे एम० ए० के विषय के सब कुछ हैं । यदि मैं इनका तीन-चार महीने का काम कर दूंगी तो चाहे पैसे लेकर कर रही हूं, यह मेरे आभारी रहेंगे और मुझे अच्छा डिवीज़न प्राप्त कराने में सहायता करेंगे।'

राय साहब मुस्करा दिए। काम पर जाते समय अपनी मोटर भेज देते कभी-कभी आती बार राकेश का टांगा निशा को घर छोड़ जाता ।

डाक्टर राकेश की आयु यही पैंतीस के लगभग होगी । देखने में अत्यन्त साधारण हैं चाहे दिमाग असाधारण है। सारा शहर जानता है कि डा० राकेश को स्त्रियों से घृणा है । *जहाँ तक होता स्त्रियों के सम्पर्क में न आते ।* एकाएक निशा की मनोविज्ञान में तेज बुद्धि और अद्वितीय सफलता

देखकर उसे अपनी खोज में सहायता के लिए रख लिया था। अभी तक राकेश ने जितनी पुस्तकें लिखी हैं उनमें यही प्रचार किया है कि यदि स्त्रियों से दूर रहना चाहो तो दूर रह सकते हो यह कठिन काम नहीं है। पुरुष की वह अनुभूति जिससे वह स्त्री की ओर आकर्षित होता है, पुरुष स्वयं जगाता है। और नारी के जाल में स्वयं फंस जाता है। यदि उसमें न फंसना हो तो दुनिया की कोई भी शक्ति उसे फंसने न देगी। मन में ऐसा अप्रिय विचार आ भी आए तो उसे दूर किया जा सकता है। यह उपाय भी राकेश ने पुस्तक में लिखे थे—किसी ध्येय के पीछे लग जाना संगीत की शिक्षा लेना या किसी अन्य आदर्श का पालन करना। नारी-नर का मिलन कोई आवश्यक बात तो नहीं है। जानवरों में तो नर और मादा मिलते हैं, फिर मनुष्य 'रेशनल एनिमल' बुद्धिजीवी कैसे हुआ ?

निशा को डा० राकेश के व्यक्तित्व से एक प्रकार का भय था। परन्तु वह उसका आदर भी बहुत करती थी। पहले ही दिन वह काम पर आई तो डाक्टर साहब ने बीस वर्षीय निशा के सांवल मुख और शरीर का निरीक्षण किया निशा कुछ लजा गई। अपनी में कभी-कभी लड़के उसे घूरा करते थे परन्तु यह तो बड़ा निकट का निरीक्षण था। वह घबरा गई।

प्रोफेसर राकेश मुस्कराए। बोले—

'निशा। तुम एक अच्छी लड़की हो क्योंकि तुम व्यर्थ में जबान चला चलाकर अपने अस्तित्व को दूसरों पर लादती नहीं। एक नारी में सबसे अधिक इसी बात की कमी होती

है जो उसे घृणित बना देती है। क्या तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

"ठीक है डाक्टर साहब मैं स्वय उन व्यक्तियो को पसन्द नहीं करती जो बहुत बोल कर दूसरों का नाक में दम कर देते हैं।"

"ओफ! तुम्हे इतना कह देना चाहिए था हां ठीक है। *डाक्टर साहब अनावश्यक शब्द है मुझे पता है मैं डाक्टर हूं* फिर मेरा निशा कहना यू ही बकवास है क्योंकि तुम्हें अच्छी तरह पता है कि तुम निशा हो।"

उसी दिन से निशा बहुत कम बोलती है। उसका उत्तर हां या 'ना' में होता है। यदि डाक्टर अधिक पूछते तो झिझकते एक आध बात का उत्तर देती। मन में भय समाया रहता। सवेर जिस समय मिलन आती तो कभी भी नमस्ते नहीं करती, केवल मुस्करा देती उसमें कोई शब्द खर्च नहीं होते। डाक्टर भी प्रत्युत्तर में मुस्करा देते और काम आरम्भ हो जाता।

डेढ़ मास तक काम बड़े जोर से होता रहा। निशा ने बड़ी मेहनत की। राय साहब ने बार-बार कहा—बेटी इतनी मेहनत तो तुमने कभी बी० ए० में भी नहीं की थी और अब क्या करती हो।

निशा इतना ही कह पाती—'ताऊजी यह बी० ए० नहीं एम० ए० नहीं रिसर्च है रिसर्च।'

ताऊ जी चुप हो जाते।

मन्ना भी कहता—"दीदी मेरी ओर देखो न मुझे तो मैट्रिक की परीक्षा देनी है फिर भी इतनी मेहनत नहीं करता।"

निशा बी० ए० की परीक्षा के बाद फौरन ही काम में लग गई थी। इतनी बड़ी मेहनत के बाद उसे हल्का बुखार आने लगा था। उसने भय से डाक्टर राकेश को बताया ही नहीं। प्रोफेसर साहब नाराज हो जायेंगे तो बना बनाया केस बिगड़ जाएगा। वह फर्स्ट डिवीजन न पा सकेगी तो कालेज की प्रिंसिपल न बन सकेगी। वह काम पर जाती रही। रात भर जाग कर नोट्स बनाती रही। डाक्टर राकेश देखते रहे उसके मुख की ओर परन्तु इतनी न तो फुर्सत थी, न ही उन्होंने निशा से पूछा क्या हुआ था उसे।

तीन दिन तो जैसे तैसे हाता रहा निशा निभाती रही। चौथे दिन शरीर ने जवाब दे दिया। उठने का प्रयत्न करती तो उठा नहीं जाता था मन ही मन नाना प्रकार के विचार उठने लगे—डाक्टर साहब सुनेंगे तो अवश्य नाराज होंगे। उसने स्वयं पत्र लिखना चाहा परन्तु खाट से उठा नहीं गया। राय साहब ने पत्र लिख कर ड्राइवर के हाथ पत्र भिजवा दिया।

ठीक समय पर निशा के स्थान पर ड्राइवर को पा राकेश को कुछ क्रोध आया। यह स्त्रियां! पत्र पढ़ा तो गुस्सा आश्चर्य में बदल गया। उसे पता था कि निशा कार में आती है। ड्राइवर पहले भी नोट्स की फाइलें लाया करता था। इसी लिए उसकी उसे पहिचान थी। राकेश भी बिना कुछ कहे ड्राइवर के साथ

बठ गया और उसी मोटर में वह रायसाहब के घर निशा को देखने के लिए आ गया।

निशा उत्सुकता से ड्राइवर के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ज्यर से उसका मुंह लाल हो रहा था सिर घूम रहा था। नन्हे की आया सिर दबा रही थी। रायसाहब बाहर गए थे और नन्हा स्कूल।

डाक्टर को आया देखकर निशा भौचक्की रह गई। राकेश स्वभाव के अनुसार मुस्कराया।

"तुम बीमार हो गई हो तकलीफ हो रही होगी, मैं बहुत दिनों से देख रहा था कि तुम्हारा चेहरा कुछ उतर रहा था, परन्तु तुम ने तो जिक्र नहीं किया कि तुम बीमार हो गई थी।'

निशा चुप रही।

'निशा ! तुम्हारी ताकत कम हो जायगी बीमारी से। जो शक्ति किसी रिसर्च के काम में लगनी थी वह तो इसी में व्यय हो जायगी। यह तो हानि उठाई है तुमने और मैंने।'

निशा मुस्करा दी।

राकेश ने निशा के सिर पर हाथ रखा। निशा की देह में रक्त का तीव्र सचार होने लगा। पहल ही बुखार के कारण बडी गर्मी थी।

"अच्छा निशा ! गुडबाई चलता हू।"

उसी संध्या के साढे सात बजे डाक्टर राकेश फिर राय साहब की कोठी पर निशा के कमरे में बठा था।

"निशा इस समय तुम से मिलता था मेरा जीवन क्रम इस भांति बन गया था आज तुम्हें अपने यहां न पाकर सोचा,

तुम्हारे यहां हो चला आऊं।"

"अच्छा किया आपने"—खोए स्वर में निशा बोली।

"अच्छा किया है तुम ने तो मुझे सोच में डाल दिया है—अच्छा किया है या नहीं।"

निशा मुस्करा दी।

"आप सोच में क्यों पड़ गए? मैं बीमार हूं, आप मेरा समाचार लेने आए, इस में सोचने की क्या बात है?"

"हां।"

पन्द्रह मिनट तक सन्नाटा रहा निशा को बुखार से घबराहट हो रही था और यह भय भी था कि कहीं डाक्टर उसकी बीमारी में बौखला न जाए।

राय साहब निशा के कमरे में आए।

'डाक्टर ! यह हैं डाक्टर राकेश मेरे प्रोफेसर।'

डाक्टर ने हाथ मिलाया रायसाहब से। "मैं सौभाग्यशाली हूं कि आप जैसे महापुरुष ने मेरे घर आने की कृपा की है।" राय साहब ने कहा।

"मैं महापुरुष ! आप गलत फरमा रहे हैं। संसार में पुरुष सब एक प्रकार के होते हैं। न कोई महान् न कोई छोटा। केवल अन्तर इतना ही होता है कि कोई अपनी पशु प्रवृत्तियों पर काबू पा लेता है और कोई यूं ही चलने देता है। फिर महान शब्द किसी नारी या पुरुष के साथ जोड़ना तो इसका गलत प्रयोग करना है।"

रायसाहब मुस्कराए—यह मनुष्य अवश्य ही एक फिलासफर होने के काबिल है।

उस रात डाक्टर राकेश ने यहीं खाना खाया और रात को जाते समय निशा से कहा "मेरा मन जाने को नहीं कर रहा निशा ! मुझे भी बीमारी हो गई है।

निशा ने केवल थकी आंखों और सूखे होठों से मुस्करा दिया।

दूसरे दिन निशा सो कर उठी तो कमरे में बड़े-बड़े गुलाब गुलदस्तों में लगे हुए थे। माया से पूछने पर पता लगा कि डाक्टर साहब का नौकर दे गया है क्योंकि बीमार मनुष्यों के लिए फूल चाहिए।

निशा नौ बजे से ग्यारह बजे तक इसी आशा में रही कि अब डाक्टर राकेश आएंगे। निशा का मन निराशा से भर गया वह क्यों आएंगे ? यदि पहले दिन आ गए तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह रोज आएं।

फिर डाक्टर राकेश जैसे व्यक्ति को अपना समझना भी बहुत बड़ी भूल है।

संध्या को डाक्टर साहब का नौकर हाल पूछ कर चला गया।

दूसरे दिन दस बजे उसकी सखी शशी आयी। निशा से लिपट गई।

निशा का विश्वास नहीं हुआ। शशी खीझ कर बोली ,,पता नहीं तुझे विश्वास क्या नहीं होता। यदि डाक्टर के यहां

मास्टर जी म मए होते ता यह ममम भरा था मैं तेर पास कसे भाती ?"

धमी क बम जान पर निशा इस समस्या को हल म कर मकी। उसका बुखार उतरने लगा। मलेरिया था। सन्ध्या को भी डाक्टर ने हाल पुछवा भेजा। बुखार तो चला गया पर डाक्टर ने परिश्रम करने को मना ही कर दी।

फिर बुखार हो जाने का भय था।

तीन चार दिन के उपरान्त निशा डाक्टर राकेश के यहाँ गई। डाक्टर वायलिन सुन रहे थे। मुख पर उद्विग्नता के चिह्न थे।

"निशा तुम आ गई अच्छा हुआ। बन्द कीजिए मास्टर साहब यह वायलिन बन्द कीजिए।

उस दिन राकेश केवल निशा से बातें करते रहे। सन्ध्या को आना उन्होंने बन्द कर दिया। राकेश ने कह दिया "तुम घर पर नोट्स तैयार करके नौकर के द्वारा भेज दिया करो, मैं ठीक-ठाक करके भेज दिया करूँगा।"

यह घर से ही नोट्स भेजती। सप्ताह में डाक्टर साहब एक बार उसके घर आकर सप्ताह भर के कार्य पर अपना मत दे जाते और विवेचन कर जाते। निशा लगन के साथ काम करती जा रही थी। उसे जरा सी भी त्रुटि रख कर डाक्टर साहब की आँखों में हीन बनना था। चार मास का काम साढ़े तीन मास में समाप्त हो गया। निशा ने सुख की साँस ली। परन्तु उसे दुःख भी हुआ कि अब वह डाक्टर

साहब के निकट न जा सकेगी।

परन्तु डाक्टर साहब 'प्रूफ' लेकर आते रहे। एक दिन निशा संध्या को बाहर टहल रही थी कि डाक्टर राकेश आ गए।

"निशा, यह रही तुम्हारी रिसर्च की पुस्तक ।"

निशा ने पहला पृष्ठ देखा आसमान से गिरी, लेखिका निशा रानी, प्रस्तावना डाक्टर राकेश।

ओह, यह क्या डाक्टर साहब ?"

यह ठीक ही तो है"–मैं चोर नहीं हो सकता। मैंने एक सप्ताह भर से अधिक काम नहीं किया फिर मेरी मानसिक स्थिति काम करने योग्य नहीं रह गई थी। सारा काम तुमने किया मैं तो संगीत सुनता रहता था। मैं पत्थर हूँ पर अन्याय कैसे करता यह तो धोखा होता।'

निशा केवल बी० ए० पास निशा ने यह इतना रिसर्च कर लिया।

"निशा और सुनो मैंने इसकी टाइप कापी यूनिवर्सिटी में दे दी है, तुम्हें पी० एच० डी० मिल जाएगी।'

निशा आवेश में भूल गई कि वह डाक्टर से बातें कर रही है। पुस्तक उसके हाथ से छूट गई। राकेश को झकझोर कर उसने पूछा—सच !!'

'हाँ सच।'

निशा की चरम आकांक्षा पूर्ण हो गई। टप टप टप आँसू बहने लगे।

राकेश ने अपने रुमाल से आँसुओं को पोछते हुए कहा—"निशा, जीवन के संगीत की कहानी तो यह आँसू ही कहते हैं।'

—इति—

रंजना और रमन

रंजना और रमन

* oooooo ooooooo

[इस कहानी में नई शैली का प्रयोग है। कई बार मनुष्य मुख से कुछ नहीं बोलते परन्तु किसी दैवी शक्ति से प्रेरित होकर वह एक ही दिशा में सोचते हैं। इस कहानी के दोनों पात्रों को आपस में बातचीत करने का सुअवसर नहीं मिलता फिर भी उनके हृदय एक दूसरे से सहानुभूति रखते हैं—सम्पादक

रंजना

वह मेरा पीछा तो नहीं कर रहा? गाड़ी आध घंटा लेट है यह आध घंटा! जिन्दगी और मौत के बीच लटकी रहूंगी। 'वेटिंग रूम' में ही बैठ जाऊं? बिल्कुल सन्नाटा है। कोई भी नहीं कोई आ भी जाएगा तो क्या? मैं अखबार सामने थाम लेती हूं। कितना थक गई हूं मैं मेरा अंग-अंग दुख रहा है किस बेदर्दी से मारता था मुझे। मैंने अच्छा किया जो वहां से आ गई। मेरा दिल घबरा रहा है मुझे

अपने साहस पर स्वयं अचम्भा होता है। मैं दुखों के भार से दब गई हूं। अब और नहीं सहा जाता था। आज की रात भयानक रात है। मेरी सहनशक्ति ने जवाब दे दिया। और दिन की तरह आज भी वह पी कर आए थे। छी, यह रुपया भी किसी किसी आदमी को बिल्कुल चौपट कर देता है। रुपय के बल पर ही तो वह रोज पी कर आते थे। पहले की भांति आज भी गालियां बकने लगे, आज पहली बार मैंने बाहर कदम रखने की हिम्मत की है। स्टेशन का रास्ता भी तो मेरा देखा नहीं था। यह छोटासा कस्बा, शाम होते ही यहां रोशनी बन्द हो जाती है। अन्धेरा हो जाने के बाद कोई स्त्री तो क्या शायद पुरुष भी घर से नहीं निकलता। नहीं, मैं भूल रही हूं। हवेली के बाहर पैर रखते ही मैंने एक आदमी को देखा है। उसे न जाने क्या सूझी जो इतनी आंधी में घर से निकला। ऊंह, मुझे क्या लेना-देना उससे। वह कुछ देर मेरे पीछे आ रहा था। किसी का क्या? जहां चाहूं जा सकती हूं। अरे !! यह तो, वही आदमी है जिसे रास्ते में देखा था। यह क्यों आया इस क्याकाम था यहां? बाहर से तेज हवा आ रही है ऐसे सन्नाटे में स्टेशन पर कोई कुत्ता भी नहीं भौंकता। क्या कहने ठीक सामने वाले कोने में बैठ गया है। बैठ जाए, मेरी बला से। इसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं। फिर भी भला दीखता है। कौन जाने, गुण्डा भी हो सकता है। चलो यह देख लूंगी क्या करता है। समझ लूंगी।

अपने साहस पर स्वयं अचम्भा होता है। मैं दुःख के भार से दब गई हूं। अब और नहीं सहा जाता था। आज की रात भयानक रात है। मेरी सहनशक्ति ने जवाब दे दिया। और दिन की तरह आज भी वह पी कर आए थे। छी, यह रुपया भी किसी किसी आदमी को बिल्कुल चौपट कर देता है। रुपय के बल पर ही तो वह रोज पी कर आते थे। पहले की भांति आज भी गालियां बकने लगे, आज पहली बार मैंने बाहर कदम रखने की हिम्मत की है। स्टेशन का रास्ता भी तो मेरा देखा नहीं था। यह छोटासा कस्बा, शाम होते ही यहां रोशनी बन्द हो जाती है। अन्धेरा हो जाने के बाद कोई स्त्री तो क्या शायद पुरुष भी घर से नहीं निकलता। नहीं, मैं भूल रही हूं। हवेली के बाहर पैर रखत ही मैंने एक आदमी को देखा है। उसे न जाने क्या सूझी जो इतनी आंधी में घर स निकला। ऊंह, मुझे क्या लना-देना उससे। यह कुछ देर भर पीछे आ रहा था। किसी का क्या ? जहां चाहूं जा सकती हू। अर !" यह तो, वही आदमी है जिसे रास्ते में दखा था। यह क्या आया इस बयाबान था यहां ? बाहर से तज हवा आ रही है ऐसे सन्नाटे में स्टेशन पर कोई कुत्ता भी नहीं भौंकता। क्या पहने, ठीक सामने वाल कोने में बठ गया है। बैठ जाए, मरी बला स। इसके बाल अस्त-व्यस्त हैं। फिर भी भला दीखता है। कौन जाने, गुण्डा भी हो सकता ह। चलो यह देख लू गी क्या करता है। समझ लू गी।

रमन

तो यहां बैठी है वह। मैं भी हैरान था कहां गई? अन्धकार तो नहीं निगल गया? मैं जब पीछे पीछे आ रहा था तो समझी कोई चोर है। दूर दूर हटकर सिसकियां भर भागने लगी। इसी लिए तो देर से पहुंचा हूं। आज इतनी निकट बैठा हूं रंजना, कुछ कदमों के फासले पर। इतनी अच्छी तरह से देख सकता हूं इसी रंजना को जिसकी आवाज पांच वर्ष से बड़ी हवेली में सुनी है। आवाज क्या वह सदैव दुःख भरी बेबसी की सिसकियां होती थीं। इन पांच वर्षों में दूसरे तीसरे गजानन्द चौधरी नशे में घर आता किसी न किसी बात पर झगड़ा कर रंजना को पीटने लगता। बेचारी रंजना कैसी उदास और गमगीन बैठी है। उसकी सुन्दर बड़ी-बड़ी आंखें डरी हुई हिरणी की तरह लग रही हैं। उन आंखों में व्यथा का सागर लहरा रहा है। चौधरी गजानन्द देख लो तुम्हारे मन पर सांप लोट जाए, उसकी झूठी मर्यादा पर बट्टा लगा कर पत्नी घर से भाग आई है। यहां अकेली, डरी, स्टेशन के वेटिंग रूम में बैठी है।

रंजना

यह तो वही व्यक्ति है जिसे मैंने घर से निकलते समय देखा था। क्या इसे भी भाग ही आना था। मुझे क्या। ओह घर छोड़ना किसी भी नारी के लिए आसान नहीं। मैं भी कभी घरबार छोड़ती पर छोड़ने की सम्भावना भी मेरे मन में कभी न आई थी। ओह ऐसा भयानक पति किसी को न दे भगवान।

देखने में उतना सौम्य। माँ, उसका गोरा रंग, चौड़ा भाल, भावकर ही प्रसन्न हुई थीं। कौन जानता था वह लड़की अभागा निकलेगी। लड़की के मुख पर जो लिखा नहीं रहता वह बड़ा भाग्यशाली होगी। उस बुढ़िया की बात आज याद हो आई है। स्कूल में उसने बहुत सी लड़कियों का हाथ देखकर हर एक के भाग्य के विषय में बतलाया था। मनोरमा का एक निर्धन पति, मुझे देखते ही वह बोली थी, तुम्हारा पति राजा होगा, हवेली का मालिक होगा, घोड़े हाथी उसके द्वार पर बंधे रहेंगे। तुम रानी कहलाओगी पर वह बुढ़िया बीच में ही चुप हो गई थी। मनोरमा और कमला जिद करने लगी उसे समझाया जाए कि क्या होगा बुढ़िया के मन में चुप्पी का क्या कारण है। वह सुन कर रहेगी। परन्तु बुढ़िया उठकर चली गई थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया था। शायद वह कहना न चाहती थी। बुढ़िया भविष्य देख सकती होगी। लोग कहते थे यह देख सकती है परन्तु हमने झूठ समझा था। काश, वह बुढ़िया यह कहती—रंजना तुम भाग्यशाली हो परन्तु उस भाग्य में दुर्भाग्य की छाया सदैव मंडराती रहेगा। रंजना, तुम पति द्वारा रोज पिटोगी। तुम्हें नित्य जूतियों की मार सहनी पड़ेगी। मैं ब्याह से इन्कार कर देती यदि मुझे जरा सा भी सन्देह होता। भविष्य के गर्भ में छिपा कौन देख सकता है ?

रमन

।का मुख कैसा तन गया है, भयानक हो उठा है।

वह अपने दुर्भाग्य पर रो रही है। शायद गजानन्द की मार की पीड़ा अभी भी बनी है। रंजना काश मैं तुम्हारे जख्मों पर मरहम लगा सकता। तुम से बात कर सकता। तुम मुझे केवल एक अपरिचित समझती हो रंजना तुम्हारे लिये मेरा कोई अस्तित्व नहीं। मैं तुम से परिचित हूं। मेरा तुम्हारा परिचय बड़ा घनिष्ट है। मैं तुम्हारी चीखों को पहिचानता हूं। चौधरी शराब पीकर आता तुम्हें मारता तुम चिल्लाती वह चीखें मेरे कानों में भी पहुंचती। तुम क्या जानो रंजना, उस आवाज में मेरे लिए क्या जादू होता। मैं सुनता तुम्हारी मार सिसकता चला जाता वह चीखें मुझे पागल बना देतीं। मैं विवश हो छत पर चक्कर लगाता। एक कोने से दूसरे कोने तक। रात भर तारों को निहारता रहता। प्राय हर दूसरी तीसरी रात को यह कांड होता। आज की रात सब रातों से भयानक थी गजानन्द चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था

'आज तुम्हें मार डालूं गा तुम्हारा गला घोंट दूं गा। और फिर तुम्हारी चीखें।

उसके बाद चीखों की आवाज बढ़ती गई। मैं सहन नहीं कर सका। घर से बाहर चला गया। यह मेरे बस की बात न थी। मैं दो तीन घन्टे बाहर घूमता रहा। लौटा तो तुम्हें हवेली से बाहर निकलते देखा। तुम्हारे पड़ोस में रहते पांच वर्ष हो गए हैं। परन्तु कभी एक दिन भी तुम्हें घर से निकलते नहीं देखा रंजना। मैं ठिठक गया। गरम चादर में लिपटी तुम

देखने में इतना सौम्य। माँ, उसका गोरा रंग, चौड़ा माथा, देखकर ही प्रसन्न हुई थीं। कौन जानता था वह भेड़िये जैसा निर्दय होगा। लड़की के मुख पर तो लिखा नहीं रहता वह कैसे भाग्यवाली होगी। उस बुढ़िया की बात आज याद हो आई है। स्कूल में उसने बहुत सी लड़कियों का हाथ देखकर हर एक के भाग्य के विषय में बतलाया था। मनोरमा को एक निर्धन पति, मुझे देखते ही वह बोली थी तुम्हारा पति राजा होगा, हवेली का मालिक होगा, घोड़े हाथी उसके द्वार पर बंधे रहेंगे। तुम रानी कहलाओगी पर वह बुढ़िया बीच में ही चुप हो गई थी। मनोरमा और कमला जिद करने लगी उन्हें बतलाया जाए कि क्या होगा बुढ़िया के मन में चुप्पी का क्या कारण है। वह सुन कर रहेंगी। परन्तु बुढ़िया उठकर चली गई थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया था। शायद वह कहना न चाहती थी। बुढ़िया भविष्य देख सकती होगी। लोग कहते थे वह देख सकती है परन्तु हमने झूठ समझा था। काश, वह बुढ़िया बता देती—रजना तुम भाग्यवती हो परन्तु उस भाग्य में दुर्भाग्य की छाया सदैव मंडराती रहेगी। रजना, तुम पति द्वारा राज पिटोगी। तुम्हें नित्य जूतियों की मार सहनी पड़ेगी। मैं ब्याह से इनकार कर देती यदि मुझे जरा सा भी सन्देह होता। भविष्य के गर्भ में छिपा कौन देख सकता है ?

रमन

रजना का मुख कैसा तन गया है भयानक हो उठा है।

बाला फूलदान मैंने भी उठाया। पीतल का फूलदान जिस के किनारे खुरदरे थे उसके सिर पर दे मारा।

हां उसी पति के सिर पर जिसके चरण छूने के लिए समाज मुझे कहता है। किसी को क्या? कोई समझ सकता, उस नारी की क्या भावनाएं होंगी जो रोज-रोज का पति से पिटती हो, लज्जित हो। कुल वातावरण में जिसका पालन हुआ हो। जिसे क्षण भर के लिए पति का प्यार न मिला हो। मुझे उस पति के नाम से मुझे घृणा है। उसे पति कहना पति जाति का अपमान करना है। मेरी माँ उसके चेहरे को देखें तो पहचाने भी न। उस पर भयानक झुर्रियां दिखलाई देती हैं। शराब पीने से मुख की कान्ति जाती रही है। उस घड़ी को मेरा धन्यवाद है भगवान ने मुझे शक्ति दी मैं साहस बटोर कर अपनी जान बचा सकी। उस सोने के पिंजर से निकल सकी।

रमन

रंजना तुम उस दुष्ट से अपनी जान बचा सकी मैं तुम्हारा धनवाद हूं। कितनी बार मुझे लगा वह तुम्हें मार डालेगा। कभी जीवित नहीं रहने देगा। जिस रात तुम पिटतीं दूसरे दिन ही महरी आकर बतलाती कल रात रंजना बीबी बहुत पिटी आज वह बिस्तर से उठी नहीं खाट पर हो पड़ी है। रंजना बीबी की पीठ सूज रही थी बुढ़ापा दर्द कर रहा था। महरी और भी नमक-मिर्च लगाकर बात सुनाती। मुझे बहुत दुःख होता, परन्तु अपना दुःख अपने तक सीमित रख, मैं

हो थीं। मेरा अनुमान सच्चा निकला।

रजना

मुझे घूर कर क्या देख रहा है। पहिचान नहीं सकता। कभी घर से बाहर कदम नहीं रखा। इतनी स्वतन्त्रता ही नही मिली कभी मुझे। जब सगाई हुई थी तो क्या सोचा था इतने बड़े आदमी की पत्नी बनने जा रही हूं। संसार भर घूम कर देखूंगी। मोटर गाड़ी पर चढ़ कर घूमने निकलूंगी। प्रति वर्ष पहाड़ पर जाऊंगी। सब सपने मिट्टी में मिल गए। मां के घर जाने तक का अधिकार छीन लिया गया। बचपन के वह दिन भी कितने अच्छे थे, जब हम हर साल नैनीताल, नहीं तो मसूरी जाते थे। मां साथ होतीं, अकेली कभी न रही थीं। मैं, आज इस तूफान भरी रात में, मै अकेली हूं। मेरे दाए हाथ का घाव चू रहा है। दर्द की टीसें जैसे मुझ पर विजय पाना चाहती हैं। मैं आज विजयी हूं किसी और वस्तु को अपने पर विजय न पाने दूंगी। चाहे यह दर्द क्यों न हो। गजानन्द धनी गजानन्द गांव के मुखिया और अपने पति पर आज मै विजय पा आई हूं। उस ने मेरे हाथ पर दूध का गिलास पटका था। मेज पर रखे हाथ से टकरा कर यह गिलास चूर चूर हो गया। अपना खून निकलते देख मेरी आत्मा विद्रोह कर उठी।

कुचली हुई सिमटी हुई भावनायें एकाएक भड़क उठीं। अपने प्रति किए गये सारे अत्याचारों का बदला चुकाने के लिए मन एकाएक मचल उठा। मेज पर लाल हरी पत्तियों

यह आभूषण और रुपयों की यह थैली मेरे काम आयेगी पर ! याद आया थैली मेरे हाथ से छूट गई थी। जिस समय मैं हवेली का बाहर वाला किवाड़ बन्द कर रही थी, यह आदमी वहाँ से गुजर रहा था।

रमन

यह थैली को क्या घुमा फिरा कर देख रही है। शायद इस में कुछ रुपये-पैसे हों। जो इसके काम आयेंगे। यह तो अपनी कमोड़ी में इसे छोड़े जा रही थी। यदि मैं उठा कर इसे न दे देता तो यह वहीं हवेली पर पड़ी रह जाती।

रंजना

ऐसा समझा है कि इस व्यक्ति से मेरे विषय में पूरी जान कारी है। शायद इसे पता है मैं ने अपने पति के माथे पर एक फूलदाण मार कर उसको घायल कर दिया है। मैं रुपया और आभूषण ले कर भाग रही हूँ। यह पुलिस को बुला सकता है। मैं भी समझ रही हूँ। मेरा निरीक्षण क्यों कर रहा है। इसे यहां खड़े होने की क्या आवश्यकता है। शायद पुलिस को बुला कर आया है। पुलिस मेरा क्या कर लगी। हथकड़ियां पहनाकर ले जाएगी। माँ को सुनकर धक्का पहुँचेगा। वह शायद इस धक्के को सहन न कर सके। वह रोती रहेंगी। नहीं नहीं की मृत्यु नहीं हो सकती। वह मुझे जेल में मिलने आयेंगी। कहेंगी मेरी बेटी तुम ने इतना साहस कैसे बटोरा ? तुम में इतनी कठोरता कैसे आई ? मैं माँ के सामने रो न सकूँ गी। उन्हें रोता देख मुझ ग्लानि होगी परन्तु रोना नहीं आएगा। माँ के गले

भीतर ही भीतर घुसने लगता। सोचता—बिचारी ने कितने कष्ट सहे हैं। कोई नहीं जो रंजना के कष्टों को गिन सके? पहचान सके? आज दुखों के भार से दबी हुई एक कोने में सिमिट कर बैठी है। मुझे यह दिन भी याद है जिस दिन गजानन्द की हवेली के बाहर एक मोटर आकर ठहर गई थी, शहनाइयों के बजने के साथ ही झिलमिलाती सोने के तारों वाली साड़ी पहने रजना कोमल सी, फला स लदी लता सी, साथ के प्रयत्नों से झुकती जा रही थी। उस समय रजना के मुख की मुस्कराहट मुझे आज भी याद है। वह मस्कराहट! जसे दिवाली के दीप जगमगा रहे थ और बसन्त की बहारें नृत्य कर रही थीं। मुझ आज भी याद है, मैंने गजानन्द की ओर देखा था यह निर्लज्ज उस समय भी शराब के नश में चूर था। उसी समय मेरे मन में किसी ने कहा, इस जानवर को ऐसी सुन्दर पत्नी मिली। यह इस योग्य न था। पत्नी से सुकुमार बादलों के बाद की खिली धूप सी। उसी समय मेरा मन रजना के लिए सहानुभूति से भर उठा था। प्रथम बार देखने पर ही मझे अनुभूति हो गई थी यह सुखी न रह सकेगी। एक सुन्दर चिड़िया गिद्ध के पंज में आ गई थी।

र जना

किसी दूसर व्यक्ति से बात करने का अवसर ही मुझ नहीं मिला। हृदय का बोझ सदा हृदय में ही दबा रहा और मैं घुटती रही। न कोई सुनने वाला था न किसी ने सुनने की इच्छा प्रकट की। मैं वहां जा रही हूं जहां पर कोई मेरा पता न पा सकेगा। मैं अपने मन की कर सकू गी।

यह आभूषण और रुपयों की यह थली मेरे काम आयेगी अरे ! याद आया थली मेरे हाथ से छूट गई थी। जिस समय मैं हवेली का बाहर वाला किवाड़ बन्द कर रही थी, यह आदमी वहाँ से गुजर रहा था।

रमन

यह थैली को क्या घुमा फिरा कर देख रही है। शायद इस में कुछ रुपये-पैसे हों। जो इसके काम आयेंगे। यह तो अपनी त्योरी में उसे छोड़े जा रही थी। यदि मैं उठा कर इसे न दे देता तो यह कहीं हवेली पर पड़ी रह जाती।

रंजना

ऐसा लगता है कि इस व्यक्ति ने मेरे विषय में पूरी बात जान ली है। शायद इसे पता है मैं ने अपने पति के माथे पर एक फूलदान मार कर उसको घायल कर दिया है। मैं रुपया और आभूषण ले कर भाग रही हूँ। यह पुलिस को बुला सकता है। मैं भी समझ रही हूँ। मेरा निरीक्षण क्यों कर रहा है। इसे यहां खड़े होने की क्या आवश्यकता है। शायद पुलिस को बुला कर आया है। पुलिस मेरा क्या कर लगी। हथकड़ियां पहनाकर ले जाएगी। माँ को सुनकर धक्का पहुँचेगा। वह शायद इस धक्के को सहन न कर सके। वह रोती रहेंगे। नहीं नहीं माँ मृत्यु नहीं हो सकती। वह मुझ जल में मिलने आयेगी। कहेगी मेरी बेटी तुम ने इतना साहस कैसे बटोरा ! तुम में इतनी कठोरता कैसे आई ? मैं माँ के सामने रो न सकूँगी। उन्हें रोता देख मुझे ग्लानि होगी परन्तु रोना नहीं आएगा। माँ के गले

में लिपट जाऊंगी। मेरे पिता हो सकता है वकील मुकरर न करें। मेरी मां उन्हें वकील बुलवाने पर जरूर मजबूर करेंगी। पिता जी नहीं मानेंगे। तो भी मां का दिल है। और फिर मैं अपनी मां की इकलौती बेटी हूं।

रमन

जाने रंजना कहां जा रही है। गजानन्द चौधरी की नाक कट गई। कल नहीं तो परसों तक सब अखबारों में छप जाएगा चौधरी की पत्नी भाग गई। चौधरी अपना सिर पीट लगा, उस अवस्था में देखने योग्य होगा। रंजना तुम्हारा चोटों को सुनते सुनते पांच वर्ष बीत गए। अब तुम जा रही हो तो मैं एक दो बात भी न कर सका। यह कैसा अनर्थ है रंजना।

रंजना

अदालत में पेशी होगा तो मैं कह दूंगी वह मुझ मारता था बहुत पीटता था। जज को विश्वास नहीं आएगा। शहर भर की परोपकारी संस्थाओं का चन्दा देने वाला गजानन्द चौधरी पत्नी को कैसे पीट सकता है जज को आश्वासन दिलाने के लिए मैं महरी को अदालत में पेश करूंगी। महरी सब सच कह देगी। उसने मेरे शरीर पर मार से बने घावों को कितनी बार सेंका है। मुझे भूख हड़ताल करते हुए कितनी बार देखा है। उसके सामने घर के स्वामी ने जूती फेंक कर कितनी बार मुझ से बातचीत की है। प्रत्येक बार यही कहा है तुम्हारे माता पिता ने धोखा दिया है। कुलच्छनी को ब्याह दिया है। रुपया पैसा भी पूरा

नहीं दिया। महरी के अदालत में पेश होने पर महाराज को भी पेश करूंगी वह बेचारा कितनी बार गया 'मालिक' बीबी, रानी तो मरमाता है। इन्हें आप इतना दुःखी करते हैं मालिक इसीलिए इस घर पर भगवान् की कृपा नहीं होती कोई खास जोगाम आप के आंगन में क्या खेलने लगा। क्योंकि यहां स्थान-स्थान पर मालकिन के आंसू बिखरे हैं। क्या जज को इस बात का विश्वास भी न आयगा ?

रमन

इस फूल से चेहरे पर भी उस निर्दय को दया नहीं आती थी। पर के बाहर तो पहरा रखता था। उसके अपने भी सम्बन्धी भीतर न आ सकते थे। एक बार मैंने भी तो सम आने का प्रयत्न किया था। परन्तु उसने उसी समय मुझे फटकार दिया था कि मैं उसके घर के मामलों में कोई दखलअन्दाजी न करूं। मुझे वह दिन याद है। यह भी याद है कि रंजना की चीखों से तंग आकर मां ने इनके घर आने का प्रयत्न किया किया था कितनी डांट सहनी पड़ी थी बेचारी को उस नराधम से। अब उसका बच्चा चुका गया एसी करारी चोट है उसके मुख पर।

रंजना

जज को वह महाराज की बात पर अवश्य ही विश्वास आ जाएगा। नहीं तो मैं किस को पेश करूंगी। मेरी ओर से कोई गवाही न होगी ? न हो मुझे कोई आवश्यकता नहीं किसी की गवाही की। मैं कहूंगी महिला डाक्टर का बच्चा

से लिपट आऊंगी। मेरे पिता हो सकता है वकील मुकर्रर न करें। मेरी मां उन्हें वकील बुलवाने पर जरूर मजबूर करेंगी। पिता जी नहीं मानेंगे। तो भी मां का दिल है। और फिर मैं अपनी मां की इकलौती बेटी हूं।

रमन

जाने रंजना कहां जा रही है। गजानन्द चौधरी की नाक कट गई। कल नहीं तो परसों तक सब अखबारों में छप जाएगा चौधरी की पत्नी भाग गई। चौधरी अपना सिर पीट लेगा, उस अवस्था में देखने योग्य होगा। रंजना, तुम्हारी चीखों को सुनते सुनते पांच वर्ष बीत गए। अब तुम जा रही हो तो मैं एक दो बात भी न कर सका। यह कैसा अनर्थ है रंजना।

रंजना

अदालत में पेशी होगी तो मैं कह दूंगी वह मुझे मारता था; बहुत पीटता था। जज को विश्वास नहीं आएगा। कस्बे भर की परोपकारी संस्थाओं को चन्दा देने वाला गजानन्द चौधरी पत्नी को कैसे पीट सकता है? जज को आश्वासन दिलाने के लिए मैं महरी को अदालत में पेश करूंगी। महरी सच सच कह देगी। उसने मेरे शरीर पर मार के घने घावों को कितनी बार सेंका है। मुझ से हड़ताल करते हुए कितनी बार देखा है। उसके सामने घर के स्वामी ने जूती फेंक कर कितनी बार मुझ से बातचीत की है। प्रत्येक बार यही कहा है तुम्हारे माता पिता ने धोखा किया है। कुलच्छनी मेरे ब्याह दिया है। रुपया पैसा भी पूरा

कर मेरे शरीर का निरीक्षण करवाइये। मुझे कितनी चोटें पहुंची हैं। मैंने अपनी जान बचाने के लिए फूलदान उठा कर मारा था। आत्मरक्षा के लिए मारना कोई जुर्म नहीं। जब और पुलिस के आदमी हवेली का वह स्थान देखने आए ग जहाँ यह घटना हुई। मैं कह दूंगी वह खान की मेज थी, मैं रात के नौ बजे तक उनकी राह देखती रही। वह जब नहीं आए, तो मैं खाना खाने बैठी—पहला ही ग्रास मुंह में डाला था कि मेरे पति आ गए। मुझे खाना खाते देख वह उबल पड़े। तुम मुझ से पहले क्यों खा रही हो? तुम्हें लज्जा नहीं आती। और कई गालियां देने लगे।

रमन

आज मैं जान पाया हूँ कि मैं कितना कमजोर दिल हूँ। मुझमें साहस क्यों नहीं? आगे बढ़कर रंजना से बात कर लूँ? वह मुझे चोर उचक्का समझकर शोर न कर दे शोर सुन कर पुलिस आ जाए तो? गजानन्द चौधरी की नींद खुल जाए, वह स्टेशन की ओर भागा भागा आ जाए तो! पुलिस मुझे सन्देह में पकड़ ले कि मैं रंजना को भगा कर ले जा रहा हूँ। नहीं नहीं, मैं रंजना की आबरू को बट्टा नहीं लगाना चाहता केवल उसकी सहायता करना चाहता हूँ। काश इस समय कोई दूसरा मेरे मन की बात जानता हो वह जा कर रंजना को समझा दे कि रमन केवल तुम्हारी ओर एक अपाहिज की तरह देख ही नहीं रहा, रंजना, वह तुम्हारी मदद करना चाहता है। रंजना, रमन की भुजाओं में बल है।

था म उस पर से कभी न निकल सकती थी। यह सब भी पलक मारते ही हो गया। अब तो म थक चुकी हूँ। परन्तु मेरी उमंग अभी ताजी है मै स्वतन्त्र अनुभव करता हूँ। सिर पर जो बोझ था वह दूर हो गया। अब मुझे किसी का भय नहीं। यह झूठ है, मुझे भय है—पुलिस का। चौधरी की नींद तो अभी नहीं खुलती, नींद? बेहोशी सिर म खून बहने पर बेहोशी, और दिन होता मैं पास बैठी रहती भाव आदि मरहम लगाती मेरे शरीर पर मनक भाव है उनकी कृपा स मुझ उस भाव का कोई चिन्ता नहीं। सहन शक्ति की भी एक सीमा होती है। न जाने क्या समय है। गाड़ी आने म कितनी देर है।

रमन

भाग बड़ा रमन एक बार बात कर लो। रचना की गाड़ी अभी आ जाएगी। एक बार ऊपर देखा। एक बार मुस्करा दो रचना। वह मुस्कान मेरे हृदय पर अंकित हो जाने दो। यह भी बता कर जाओ तुम कहाँ जा रही हो। पता बता दो रचना। वह भी मौन रहेगी जब तक तू आगे न बढ़ेगा रमन। आगे बढ़ कर बात कर।

रचना

मेरे याद में कोई भी दिन ऐसा नहीं जिस दिन उन्होंने मेरे दुःख सुख की बात पूछी हो। अभी थोड़ी देर म यहाँ स जाऊँगी। एक भी मधुर स्मृति नहीं। जब जब यहाँ की याद आवेगी हृदय कचोटेगा। इतनी बड़ी हवेली में एक भी तो

कुछ ही मिनटों में छिन जायेंगी। रंजना आवेश से भर उठी है। अखबार को जिस हाथ ने पकड़ा है वह हाथ कांप रहा है। रंजना, कुछ तो बोलो, तुम अखबार में आखें गड़ाए बैठी हो। शायद तुमने बोलना तो सीखा ही नहीं। केवल सुनना सीखा है। सहना सीखा है।

रंजना

पांच वर्षों के लम्बे वैवाहिक जीवन में पहली बार आत्मसुरक्षा की भावना मन में जाग उठी। बार बार पिटने पर भी मैं चुप थी, परन्तु अब चुप रहना मुश्किल हो चुका था। खून से भरी आँखें लिए वह मेरी ओर गला घाटने के लिए आगे बढ़े। उनके हाथ में शीशे का गिलास था, जिसे उन्होंने पहले मेरे हाथ पर फेंका। बांया हाथ मेज पर टिका था गिलास पड़ते ही चकनाचूर हो गया, मेरे हाथ से खून की धारा बह निकली।

रम।

रंजना मैं चुपचाप तुम्हारी ओर देख रहा हूं मैं ऐसा नहीं हूं। कुछ कहना चाहता हूं किन्तु तुम्हारे भय से ही मेरी जुबान नहीं खुलती। तुम्हारे हाथ का रुमाल खून से भर गया है। भगवान ने जाने किस जन्म का बदला तुम से लिया है। मेरी तो रूह कांपती है।

रंजना

अपना खून देख कर मने फूलदान ... मारा बदले की भावना ने मुझे पागल बना दिया। कोई दूसरा रास्ता न

था, म उस घर से कभी न निकल सकती थी। यह सब भी पलक मारते ही हो गया। अब तो मैं थक चुकी हूँ। परन्तु मेरी उमंग अभी ताजी है मैं स्वतन्त्र अनुभव करती हूँ। सिर पर का बोझ था वह दूर हो गया। अब मुझे किसी का भय नहीं। यह झूठ है, मुझे भय है—पुलिस का। चौधरी की नींद तो अभी नहीं खुलती, नींद? बेहोशी सिर से खून बहने पर बेहोशी और दिन होता म पास बैठी रहती घाव धोती मरहम लगाती मेरे शरीर पर अनेक घाव हैं उनकी कृपा से मुझ उस घाव का कोई चिन्ता नहीं। सहन शक्ति की भी एक सीमा होती है। न जाने क्या समय है। गाड़ी आने म कितनी देर है।

रमन

आज बहा रमन एक बार बात कर लो। रजना की गाड़ी अभी आ जाएगी। एक बार ऊपर देखो। एक बार मुस्करा दो रजना। वह मुस्कान मेरे हृदय पर अंकित हो जाने दो। यह भी बता कर जाओ तुम कहाँ जा रही हो। पता बता दो रजना। वह भी मौन रहेगी जब तक तू आगे न बढ़ेगा रमन। आगे बढ़ कर बात कर।

रजना

मेरी याद में कोई भी दिन ऐसा नहीं जिस दिन उन्होंने मेरे दुःख सुख की बात पूछी हो। अभी थोड़ी देर में यहाँ से जाऊंगी। एक भी मधुर स्मृति नहीं। जब जब यहाँ की बात याद की हृदय कचोटेगा। इतनी बड़ी दुनिया में एक भी तो

ऐसा आदमी नहीं जिस की याद सुखद होगी। बचारा बूढ़ा महाराज ही सहानुभूति दर्शाता था। महरी तो भौंह मटका कर बात करती थी। जैसे मेरी दुदशा में भी उसे एक रस आता हो। जैसे उसके लिए यह भी जगह जगह बातचीत करने का एक दिलचस्प विषय हो। नहीं महरी ने दो चार बार नहीं, कई बार एक रमन बाबू की बात भी तो की है। वह हवेली के पड़ोस में रहते हैं उनकी मां है घर में और कोई नही। रमन बाबू ही केवल ऐस व्यक्ति हैं जो मेरे बारे में महरी से बार बार पूछा करते थ। याद आया, महरी ने यह भी तो कहा था कि रमन बाबू को मेरी चीखों से बहुत दुःख था। निर्दय मुझे मारता इस बदर्दी से था चोखें मेर बस की बात नहीं रहती थीं।

रजना और रमन

रमन—गाड़ी आ गई।

रजना—हां गाड़ी आ गई।

रमन—आप आप जा रही हैं ?

रजना—जा रही हूं आप को क्या एतराज है ?

रमन—मुझे एतराज नहीं नहीं मैं तो आप से कुछ कहना चाहता था।

रजना—गाड़ी आ गई है म जा रही हूं मुझ पता है आप क्या कहना चाहते हैं।

रमन—सच !! आप जानती हैं मे क्या कहना चाहता हूं ?

आप कहाँ जा रही हैं ? आप का पता क्या होगा ?

रंजना—आप को पता मैं क्यों बताऊंगी ?

रमन—अब आप गाड़ी में सवार तो हो गई, देखिये आप, आप कुछ और समझ रही हैं, विश्वास कीजिये, मैं आपका हितैषी हूं।

रंजना—आप कौन हैं ?

रमन—मेरा नाम रमन है आप के पड़ोस में रहता हूं।

रंजना—रमन रमन तो आप रमन हैं !

रमन—तो आप मुझे जानती हैं ?

रंजना—हां नहीं नहीं।

रमन—पता न बतलाएंगी ? आप कहां जा रही हैं ?

रंजना रंजना रंजना । ओह गाड़ी चली गई।

१८

गुणवन्ती मौसी

गुणवन्ती मौसी

आँख के अन्धे नयनसुख वाली उक्ति प्राय हमारे दैनिक जीवन में चरितार्थ होती दिखाई देती है। हमारी गुणवन्ती मौसी ऐसी नहीं है वह वास्तव में गुणों का भंडार है। गुणों से आप यह मतलब मत लगा लीजिए कि वह बहुत बड़ी लेखिका है या किसी कला-केन्द्र की अध्यक्षा है। वह चित्रकार या कवयित्री भी नहीं है और यदि आज्ञा दें तो यह भी बतला दूं कि वह संसद की सदस्या भी नहीं। फिर आप कहेंगे जब वह यह 'सब' नहीं तो उसकी चर्चा से लाभ? आजकल तो उस मौसी बुआ या बुआ की ननद की मौसी, और उससे भी निकट का सम्बन्ध स्थापित करना हो तो आप यानी जिसमें 'हम' सम्मिलित हैं अक्सर ऐसी मौसी की सास की भतीजी की नानी से कोई न कोई सम्बन्ध निकाल लेते हैं और उन्हीं की चर्चा में हमें अतीव आनन्द मिलता है।

है जैसे किसी ने मक्खन में केसर मिलाया हो। गोल मुख पर बड़ी-बड़ी आँखें उन पर सुनहरी फ्रेम की ऐनक जो 'दृष्टि दोष' के लिए नहीं लगाई गई थी।

मौसी जब मुस्कराती तो उनका ऊपर वाला होंठ, जिस पर एक बड़ा सा तिल है ऊपर नीचे उठता है फड़कता रहता है, देखने वालों का हल्का सा मनोरंजन करता है। पुण्यवन्ती मौसी बहुत बात करती है, एक बार शुरू हो जाती है तो उन बातों का अन्त नहीं होता। बातें करने के साथ साथ मुख पर हर भाव के साथ एक नयी प्रतिक्रिया होती है। जब हंसती है तो उनका दोहरा शरीर माठ तह पा जाता है।

पुण्यवन्ती मौसी हमारी माँ की सगी चचेरी, ममेरी या किसी तरह की 'धर्म-बहन' भी नहीं है। वह लाहौर में हमारे एक तीन महीने पुराने पड़ोसी, यानी बरसों साथ वाले मकान में रहने वाले पड़ोसी भी नहीं केवल नए पड़ोसियों की वहीं छोटे से शहर में पड़ोसिन रह चुकी थीं। एक बार लाहौर में प्रदर्शनी हुई थी उसमें वह आई थीं पड़ोसियों ने पुण्यवन्ती मौसी से परिचय करवा दिया था। एक ही बार हमारा नमस्कार हुआ था।

कुछ मास पूर्व दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग प्रदर्शनी हुई थी। तब जिस घर ने कभी भी मेहमानों का मुख नहीं देखा था वहाँ भी मेहमान आये थे। हमारे यहाँ की बात ही दूसरी है। बाव सरकार की घार से एक सरकारी वाकर्मयवसा है जिस में नवम प्रधिकारी वर्ग के लोग माकर ठहरते हैं, परन्तु

हम सोचते हैं, भरी सभा में हुस्के से, झूठे या सच्चे रिश्ते का उल्लेख कर देंगे तो वह बात सूखी लकड़ियों की आग की तरह फल जाएगी। क्षमा कीजिएगा लकड़ियाँ तो आज के युग में फिर भी मंहगी हैं, परन्तु ऐसी बातें तो केवल धीरे से, दूसरे व्यक्ति को विश्वास पात्र बना कर कान में फुसफुसा दी जाती हैं और बिना दामों के स्वतः ही फलने लगती हैं।

हमारी मौसी बेचन हमारे मौसा श्री मुरलीधर जी की धमपत्नी हैं। श्री मुरलीधर ने शायद जीवन भर में, राम झूठ न बुलवाये सच्ची मुरली के दर्शन नहीं किय होंग। हाँ, वैसे तो वह नियमपूर्वक अपना माथा मुरली वाल" के सामने झुकाते हैं। श्री मुरलीधर की एक बड़ी सी दुकान, पंजाब के एक बहुत ही छोटे से शहर में है। शहर का नाम बतला दिया तो जानते हैं क्या होगा ? ठीक वही होगा, जिसकी मुझे आशंका है और जिसका वृत्तान्त मैं आपको अभी बत लाने जा रही हूं। पति की आभूषणों वाली दुकान में जो सोने का 'सेट' नया बनता है, चाहे वह जड़ाऊ हो या सादा एक दिन मौसी के शरीर की शोभा जरूर बढ़ाता है। वैसे कहना तो नहीं चाहिए परन्तु पूरी बात का आधा महत्व जाता रहेगा यदि मैं मौसी के व्यक्तित्व पर प्रकाश न डालूं। मनोविज्ञान का बड़े से बड़ा पंडित भी इस बात से इन्कार नहीं करगा कि शरीर व्यक्तित्व का बहुत ही आवश्यक अंग है। गुणवन्ती मौसी जहां चार फुट दस इंच लम्बी हैं वहाँ उनका वजन साढ़े तीन मन से कम तो न होगा। देखा जाय तो

है जैसे किसी ने मक्खन में केसर मिलाया हो। गोल मुख पर बड़ी-बड़ी आँखें उन पर सुनहरी फ्रेम की ऐनक जो 'दृष्टि दोष' के लिए नहीं लगाई गई थी।

मौसी जब मुस्कराती तो उनका ऊपर वाला होंठ जिस पर एक बड़ा सा तिल है ऊपर नीचे उठता है फड़कता रहता है, देखने वालों का हल्का सा मनोरंजन करता है। पुराणवन्ती मौसी बहुत बात करती हैं, एक बार शुरू हो जाती हैं तो उन बातों का अन्त नहीं होता। बातें करने के साथ साथ मुख पर हर भाव के साथ एक नयी प्रतिक्रिया होती है। जब हंसती हैं तो उनका दोहरा शरीर आठ तह पा जाता है।

पुराणवन्ती मौसी हमारी माँ की सगी चचेरी ममेरी या किसी तरह की 'मान-बहन' भी नहीं हैं। वह लाहौर में हमारे एक तीन महीने पुराने पड़ोसी, यानी बरसों साथ वाले मकान में रहने वाले पड़ोसी भी नहीं केवल नए पड़ोसियों की वहीं होने से शहर में पड़ोसिन बन चुकी थीं। एक बार लाहौर में प्रदर्शनी हुई थी उसमें वह आई थीं पड़ोसियों ने पुराणवन्ती मौसी से परिचय करवा दिया था। एक ही बार हमारा नमस्कार हुआ था।

कुछ मास हुए, दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग प्रदर्शनी हुई थी। नए जिस घर में कभी भी मेहमानों का मुख नहीं देखा था वहाँ भी मेहमान आन थे। हमारे यहाँ तो बात ही दूसरी है। आज सरकार की धार से एक सरकारी धर्मशाला है जिस में बड़े अधिकारी वर्ग के लोग आकर ठहरते हैं, परन्तु

हमारे 'डाकबंगले' में न किराया लगता है, न धोबी की धुलाई, सुबह का नाश्ता और रात का भोजन भी किसी न किसी तरह मिल ही जाता है। रही दोपहर के भोजन की बात, वह आजकल घर में खाने का रिवाज नहीं। खैर मैं बात अपने यहाँ के डाकबंगले की कर रही थी। दिल्ली में इतनी बड़ी सुमायश हो, वह न देखी जाय भला यह कैसे हो सकता था। धड़ाधड़ मेहमान पके आमों की तरह टपकने लगे। दिल्ली में पाँच छः कमरों का घर हो और हर कमरे के साथ स्नानगृह सदा हो तो आप को औपचारिक विधि से किसी को निमन्त्रण देने की आवश्यकता नहीं, वह काम गेतकल्लुफ मेहमान स्वयं ही कर लेते हैं।

मेहमानों से घर भरा पड़ा था। उस शाम को अधिक सर्दी नहीं थी। रात्रि के पौने नौ बजे के लगभग समय होगा। मैं चाय पी रही थी। उसी समय श्रीमती गुणवन्ती मौसी ने प्रवेश किया। हाथों में सोने की बीस-बीस चूड़ियाँ, गले में पाँच छः हार क्षमा कीजिएगा, उतनी जल्दी में मैं पूरी तरह से हारों की गिनती नहीं कर पाई कम गिनाने से, हमारे मौसा की प्रतिष्ठा में बट्टा लगेगा। मौसी ने आते ही मुझे गले लगा लिया। सच मानिये, उन्होंने मुझे क्षण भर का समय नहीं दिया कि मैं उठ कर उनका स्वागत करूं।

अरे! तुमने पहिचाना नहीं अच्छी भांजी हो?'

मेरी सगी मौसी कोई नहीं। फिर यह कौन हैं? किसी मामी की माँ भी नहीं है। पंजाब में मामी की माँ को मौसी कहने का रिवाज है।

इतने में उनका बड़ा लड़का बिस्तर उठाये आगे बढ़ा। वह मुस्कराकर बोलीं– 'बेटा बहन को नमस्कार करो तुम्हारे जीजा शायद बाहर गए हैं, झट से सब सामान अपने आप ऊपर ले जाओ।"

तब कहीं मुझे आभास हुआ और दिमाग में यह बात कौंधी कि यह तो यहाँ रहने आई हैं।

मौसी की जुबान बोलती रही एक क्षण भी रुकी नहीं।

जो कुछ उन्होंने कहा था उसका दो शब्दों में मतलब यही था कि अमृतसर के गुरुद्वारों में वह अपने सातवें पुत्र, तथा बड़ी लड़की के लड़के तथा अपनी, तीसरी लड़की के लड़के का मुंडन करवा उन्हें माथा टिकाने के लिए यहाँ ले आई थी तो उनकी मुलाकात मेरी बुआ की ननद की ननद से हुई और वहीं से उन्होंने मेरा पता पाया। हाँ 'पोस्टकार्ड' तो परायों को लिखा जाता है, मैं भला कोई परायी थी! फिर कौन वह महीना दो महीने रहने आई थीं यही दो चार दिन की बात थी क्या हुआ कि कुल मिला कर वह चौदह बड़े प्राणी तथा पाँच छः बच्चे थे।

मौसी ने मुझ तो हाथ से पकड़ कर अपने पास बैठा लिया। कमरे के भीतर उनका लड़का लड़की या उन लड़के लड़कियों के पति पत्नी या फिर कोई बच्चा बारी-बारी से आने लगा। मौसी-जिन के लिए खासा अपार मेल बराबर था बड़ी तत्परता से मेरा 'इन्ट्रोडक्शन' पूछ पूछियों नाती पोतों से करवा रही थी। किसी की मैं बुआ थी और किसी की मैं मौसी बड़ी बहन और छोटी बहन।

उस समय मुझे लग रहा था शायद मैं कोइ सिनेमा की फिल्म देख रही हूं। वर्ना लोगों की इतनी भीड़ जिन्हें मैंने जन्म भर देखा तक नहीं, कैसे एक के बाद एक बढ़ती ही जा रही थी। मुझ से किसी तरह आज्ञा लेने या कुछ पूछने की आवश्यकता शायद तो मौसी ने नहीं समझी। वह स्वयं ही सब को बतलाने लगी कि वह क्या क्या करें, उनके कथनानुसार बड़े लड़के ने ड्राइंग रूम का 'कारपेट' खोल कर दिया सोफे की कुर्सियां दूर-दूर हटा दी और वहां अपना तथा अपने बहन भाइयों के बिस्तर बिछा दिए।

जब बिस्तर तक नौबत पहुंच चुकी थी तो मुझे ख्याल हुआ इन्हें कुछ खाने के लिए भी तो पूछना चाहिए।

मौसी ने मेरे पति के बारे में अपने आप ही ज्ञान अर्जित कर लिया। मैं हैरान थी यह स्त्री यदि इतनी कुशाग्र बुद्धि रखती है तो इसे कहीं न कहीं मिनिस्टर होना चाहिए था।

खाने के लिए पूछने पर वह बोलीं—"मेरा तो व्रत है, मैंने सुबह से अब तक पानी नहीं पिया।"

एक छोटा सा बच्चा बोला—"नानी तुम ने दूध तो पिया था।'

मौसी को बच्चे की उस बात से कुछ बुरा नहीं लगा। वह झेंपी भी नहीं मुस्करा कर बोलीं, "बेटी पाव भर बर्फी मंगवा लो मैं पानी पीऊंगी, कोरा पानी मेरे कलेजे में लगता।" आप यह न सोचें कि मौसी का व्रत था इस लिए इन्हें बर्फी

की आवश्यकता पड़ी। दूसरे दिन सुबह भी उन्होंने बर्फी खा कर ही पानी पिया। यही उनका नियम था।

मौसी ने बड़े प्रेम से कहा 'बहन से परमात्मा क्यों है? तुम चाय पीने की आदत है तो कहता क्यों नहीं, तेरी बहन पढ़ी-लिखी है, अभी देख कैसे चटपट तुम लोगों के लिए चाय और नाश्ता बनाती है।

मैं थक कर चूर थी उसी दिन सन्ध्या को कुछ मेहमानों को विदा कर चुकी थी। घर में नौकर केवल एक था वह भी मेहमानों के लिए खाना बना बना कर तंग आ चुका था। मैं हतप्रभ सी मौसी के मुख की ओर देख रही थी। मौसी बड़ी चालाकी से मुझ से कहलवा चुकी थीं कि खाना अभी बना जाता है। इतने में मेरे पति आ गए। मैं फिर से नहीं दोहराऊँगी कि उनका परिचय मौसी ने खुद ही, किन शब्दों में अपने परिवार से करवाया। परिवार कहना तो उन दोनों बड़े परिवारों का अपमान करना होगा अंग्रेजी में एक शब्द है "इन्ट्रूडर," यही मौसी के साथियों की परिभाषा हो सकती थी।

मैं रसोई घर में जुटी थी वहां मेरे पति आए और धीरे से दब स्वर में बोले— 'मैं इन मेहमानों से तंग आया तुम इन्हें किसी होटल में ठहरने के लिए कहो।

अभी अधूरी बात ही उनके मुख में थी कि मौसी उनकी भानी मेरे पति की बलाएं लेती हुई कमरे के भीतर आ गयीं। मैं चुपचाप काम में जुटी रही। मौसी ने बड़ा सम्पूर्ण

किया, प्राध सेर बर्फी खाई, तीन पाव दूध पिया और रात्रि भाज—जो साढ़े ग्यारह बजे खाया—मैं लिए पूरी और हलवे की फरमायश कर दी।

मेरे छोटे भाई बहन यानी मेरी मौसी के लड़के लड़कियाँ अपनी मां की प्राज्ञा मान, उस घर को अपना ही घर समझ, जहाँ तहाँ फर्श पर पानी फेंकने लगे। रात का खाना खाने तक वह लोग एक दजन शीशे के गिलासों को ठिकाने पर लगा चुके थे। मेरी मुश्किल की कुछ मत पूछिये, न तो मैं अपने पति से आँखें मिला सकती थी, क्योंकि वह बार-बार मौन रूप से डाँट रहे थे कि यह मेरा ही दोष है जो हमारे घर को लोग धर्मशाला बनाये हुए हैं।

भोजन हो चुकने के बाद मौसी ने कहा कि उन्हें तो मलाई खाए बिना नींद ही नहीं आती। यह कहना अतिशयोक्ति न समझा जाए तो सच बतलाऊं कि उस रात को हलवाई से एक सेर मलाई और पाँच सेर दूध आया जो बच्चों को पिलाया गया।

मेरे पति ने घर छोड़ जाने की धमकी भी चुपके से दे दी। गुणवन्ती मौसी की बुद्धि की प्रशंसा किए बिना मैं न रह सकूंगी। उन्होंने झट से कहा—हम मौसी भांजी पास-पास सोयेंगे, हम ने बहुत दिनों से एक दूसरे से सुख-दुःख की बात नहीं की है। इस बात को मैं दोहराऊंगी नहीं कि जीवन में उनसे मैं प्रथम बार मिल रही थी।

गुणवन्ती मौसी ने रात को बहुत सी बातें की जिनका

यहाँ उम्मेद कुछ बेतुका सा लगता है परन्तु एक बात उन्होंने बड़े प्रगतिवादी ढङ्ग की कही— 'बच्ची तुम्हारे मौसा को मैं वहीं छोड़ आई हूँ। इन बूढ़ों के साथ सैर सपाटा बड़ा मुश्किल हो जाता है। फिर मौसी की आँखों में आँसू आ गए और उन्हें अपने महीन आशीर्वाद दुपट्टे से, जिस पर रुपहली तारों की कढ़ाई हुई थी पोंछती हुई बोली "औरत के लिए यह कितना बड़ा दुःख है कि उसका पति उसके देखते-देखते बड़ा हो जाए।"

मैंने आँखें अच्छी तरह से मलकर गुणवन्ती मौसी की ओर देखा जो बूढ़ से जवान होने वाली दवाइयों काले से गोरे होने वाले नुस्खों तथा चार दिन में नया जीवन पाने वाली गोलियों का चुनौती दे रही थीं। मैं मन ही मन सोचने लगी कोई 'इटरनल यूथ' का कम्पटीशन हो तो मौसी को जरूर प्रथम पुरस्कार मिल जाएगा। सात लड़के पाँच लड़कियाँ। ठीक एक दर्जन जीवित और लगभग आधा दर्जन मरे बच्चों की माँ ! सिर का एक बाल सफ़ेद नहीं !

मौसी कितनी देर बात करती रहीं मुझे याद नहीं। मैं थक कर चूर थी सो गई। दूसरे दिन फिर वही कमेला शुरू हुआ। मौसी की अनुभवी आँखों ने मुझे और मेरे पति को पाँच मिनट भी एकान्त में बात नहीं करने दी। कहीं हम दोनों मिलकर उन्हें घर से निकाल न दें। इतनी हिम्मत हम कभी चाह कर भी कर पाते ?

नाश्ते पर कितनी पूरियाँ बनीं या एक सेर कचौरियों की

फरमायश मौसी ने की, उनका ब्योरा न देकर केवल इतना कहूँगी कि नुमायश में साथ ले जाने के लिए भोजन की माग शुरू हुई।

मौसी का बड़ा लड़का बोला, "बहन जी के घर का खाना बहुत अच्छा है।"

मौसी का सर्वांग खिल उठा, 'वाह। तुमने बहन के बनाये पराठे तो खाए नहीं। एक बार खाओ तो याद रह जायें।"

मेरे बनाए पराठे अच्छे होते हैं, यह मौसी ने कैसे जाना? इस विज्ञान का क्या नाम हो सकता है? यह न टलीपैथी है और न ऐलोपथी। मेरे ख्याल में इसे 'गैसोपैथी' कहना चाहिये।

मौसी का महाना कैसे हुआ और कैसे वह नुमायश के लिये तयार हुई, जैसे लड़का ब्याहने जा रहीं हों।

मेरे नौकर ने यह बात बहुत ही धीरे से कही कि नुमायश में बहुत अच्छा खाना मिल जाता है। मौसी ने कहा—"पर देस में कौन भरोसा, बेटी, तू कोई तीस पतीस पराठे रख द अधिक कष्ट मत कर।"

हमारे घी की शामत तो आनी ही थी, परन्तु पड़ोसियों का घी भी खत्म हो गया। सब साथ कर मौसी को सवारी की चिन्ता हुई। वह अपना सुनहरी चश्मा चढ़ाती हुई बोली—
म तो बसों में चढ़ी नहीं। तांगे के लिये वह जगह बहुत दूर है। केवल एक साधन रह गया है, मोटर।' हमारे यहाँ मोटर

न होने पर मौसी ने एक व्याख्यान दे डाला। मैं अपने पति के डर के मारे घर के भीतर घुस गई क्योंकि मौसी बरामदे में लेक्चर दे रही थीं।

हमारे पड़ोसियों के पास मोटर है। उन्होंने दुर्भाग्य से बाहर निकाली, उसकी सफ़ाई होते देख, मौसी बोलीं—

'अरे बेटी पड़ोसियों की मोटर और अपनी में कोई भेद होता है फिर तुम तो बतला रही थी कि हमारे पड़ोसी बहुत अच्छे हैं, बिल्कुल आदमियों की तरह। मेरे भी तो बेटे की तरह हुए। मौसी को नुमायश तक पहुँचा न देंगे?

पड़ोसियों ने सुना वह बेचारे झेंपकर रह गए। इससे पहले कि वह कुछ बोलें, मौसी उनके लिए फैसला सुना चुकी थीं। करते क्या न करते। उन्होंने मौसी को तथा उनके परिवार को दो बार में नुमायश पहुँचाया।

मौसी के बहुत आग्रह करने पर भी मैं उनके साथ नुमायश न जा सकी।

गुणवन्ती मौसी के गुणों का बखान कहाँ तक करूँ। दो दिन दिल्ली रह कर जब वह वापिस जाने लगीं तो मेरे हाथ पर दो रुपए रख दिए—'बेटी क्षमा करना तुम्हें बड़ी तकलीफ़ दी है। फिर सच पूछो तो अपने आदमियों की तकलीफ़ तो नहीं होती। मुझे पूर्ण आशा है कि तुम भी हम लोगों से मिलकर प्रसन्न हुई होगी।

धीरे धीरे, नमस्कार आशीर्वाद समाप्त हुआ। दो रुपये मेरी हथेली पर थे और मैं समझ रही थी उस दक्षिणा का सही

भय क्या है ऊँट के मुँह में जीरा। मौसी सीढ़ियाँ उतर कर फिर लौट आयीं, मेरा दिल धक से रह गया। जाने शायद इन्होंने इरादा बदल लिया है। वह हाँपती हुई आयीं और बोलीं —यह चवन्नी ले लो बटी अपने नौकर को दे देना।

मैंने मन में सोचा जमादार के लिये भी शायद इकन्नी है। परन्तु वह फिर मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई, सकड़ों आशीर्वाद देती हुइ सीढ़ियाँ उतर गयीं। कहने की आवश्यकता तो नहीं कि हमारे पड़ोसी की मोटर बाहर खड़ी थी, जिसमें किसी तरह लद कर, आप लोग एक बार और आधे दूसरे बार गये।

आप भी गुणवन्ता मौसी के गुणों की प्रशंसा किए बिना न रह सकेंग कि पड़ोसियों की मोटर पर हम लोग तो कभी कनाट-प्लस तक न गए व कहां मौसी उसे अपने घर ही की मोटर समझ कर पहल नुमायश घूमती रहीं फिर स्टेशन पर भी ल गयी। हमार पड़ोसी आज तक मौसी को याद करते हैं। बड़ी हसमुख थीं बड़ी ही बतकल्लुफ थी। भदभाव बरतना वह बिल्कुल नहीं जानती थीं। राजा की रानी होकर अमे तो सब राजा समाप्त हो गये हैं क्या उनको टैक्सी की कमी थी? नहीं हमारी मोटर ही उन्हें अच्छी लगती थी।

कभी कभी मन में विचार आता है कि मौसी स मदसा सू परन्तु चौदह-पन्द्रह साल आखिर कहां से इमन्द्ठ कर अभी तक यह नहीं समझ पाई।

विषय सूची